श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष-११ फरवरी-१९९२ अंक २

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिक्षा के आजीवन सदस्य

९१. श्रीमती कमला घोष—इलाहाबाद
९२. श्री एम. डी. शर्मा—अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. शारदापीठ विद्यालय—इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री वसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जगेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद—जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२. श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० पी० सी० सिन्हा—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११५. मानस समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री पालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ११ | १९९२—फरवरी | अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप ईश्वर का ध्यान करो, तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा। यह आनन्द वास्तव में नित्य ही विद्यमान है, किन्तु अज्ञान के द्वारा आच्छन्न होकर वह मानो लुप्त हो गया है। इन्द्रिय-योग्य विषयों के प्रति तुम्हारा आकर्षण जितना कम होगा, ईश्वर के प्रति तुम्हारा अनुराग उतना ही अधिक बढ़ेगा।

(२)

यह ठीक है कि बाघ के भीतर भी परमेश्वर विद्यमान हैं, पर इस कारण उसके सामने नहीं चले जाना चाहिए। उसी प्रकार यद्यपि अत्यन्त दुर्जन व्यक्तियों के भीतर भी ईश्वर विराजमान हैं, तथापि उनकी संगति करना उचित नहीं।

(३)

सृष्टि के लिए शिव तथा शक्ति दोनों की आवश्यकता है। कुम्हार सूखी मिट्टी से घड़ा नहीं बना सकता, पानी भी चाहिए। इसी प्रकार शक्ति की सहायता के बिना केवल शिव के द्वारा सृष्टि नहीं हो सकती।

(४)

अगर घड़े में कहीं एक छोटासा- भी छेद रहे तो उसका सारा पानी धीरे-धीरे बह जाता है। उसी प्रकार साधक के भीतर यदि थोड़ी भी संसारासक्ति रह जाए तो उसकी सब साधना व्यर्थ हो जाती है।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

(छाया खमाज-एकताल)

कखन कि रंगे थाको मा श्यामा सुधातरंगिनि ।
तुमि रंगे भंगे अपांगे अनंगे भंग दाओ जननि ।।

लम्पे झम्पे कम्पे धरा, असिधरा करालिनी ।
(तुमि) त्रिगुणा त्रिपुरा तारा भयंकरा कालकामिनी ।।

साधकेर वांछा पूर्ण करो नाना रूप-धारिणी ।
(कभु) कमलेर कमले नाचो मा पूर्ण ब्रह्म सनातनी ।।

—कमलाकान्त चक्रवर्ती

भावानुवाद (छाया खमाज—एकताल)

कब किस रंग में रहो माँ श्यामा सुधा तरंगिणी ।
निरख तेरी अद्‌भुत क्रीड़ा अनंग भी शरमाये जननी ।।

उच्छल कूद से काँपे धरा असिधरा करालिनी ।
(तुम) त्रिगुणा त्रिपुरा तारा भयंकरा काल कामिनी ।।

साधक इच्छा करो पूर्ण तुम नाना रूप धारिणी ।
(कभी) हृदि कमल में नाचो माँ तुम पूर्ण ब्रह्म सनातनी ।।

—स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ
इलाहाबाद

श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला

स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव—रामकृष्ण मठ और मिशन
अनुवादिका—डा० नन्दिता भार्गव

श्याम पुकुर के मकान में श्रीरामकृष्ण

श्याम पुकुर भगवान श्रीरामकृष्ण की मधुर स्मृति से परिपूर्ण एक पवित्र स्थान है। इस अंचल में वे अनेक बार आये। यहाँ उनकी देव-मानव लीला की जो अभिव्यक्ति हुई थी, उसकी स्मृति सदा उज्ज्वल रहेगी। इस इलाके में कुछ ऐसे भाग्यवान भक्त थे जिन्हें श्रीरामकृष्ण को अपने घर ले आकर किंचित् सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनमें उल्लेखनीय हैं—नेपाल राज्य के प्रतिनिधि विश्वनाथ उपाध्याय (कप्तान), प्राण कृष्ण मुखोपाध्याय (मोटे ब्राह्मण), और काली पद घोष (दाना काली)। विश्वनाथ उपाध्याय २५ नं० श्याम पुकुर स्ट्रीट, प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय ४० नं० रामधन मित्र लेन तथा काली पद घोष २ नं० श्याम पुकुर लेन में रहते थे। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण के कृपा प्राप्त कुछ और भक्त भी वहाँ रहते थे, जैसे पूर्ण चन्द्र घोष, नरेन्द्र मित्र (छोटा नरेन) देवेन्द्र घोष, अध्यापक नरेन्द्र बन्दोपाध्याय तथा महामाया मित्र (दाना काली की बहन)।

श्याम बाजार का विद्यासागर स्कूल भी श्रीरामकृष्ण की स्मृति से जुड़ा हुआ है। उन दिनों वह "मेट्रोपालिटन स्कूल" (श्याम बाजार शाखा) के नाम से जाना जाता था और श्याम बाजार स्ट्रीट में अवस्थित था। स्कूल के फाटक के पास एक बड़ का पेड़ था। उस पेड़ के नीचे एक दरबान (वह उत्तर प्रदेश का रहने वाला था। मुद्गर चलाया करता था। महेन्द्रनाथ गुप्त इस के प्रधानाध्यापक थे।

इस अंचल की सबसे महत्त्व पूर्ण घटना थी स्वयं श्रीरामकृष्ण का यहाँ आकर रहना। उनके जीवन का एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण भाग यहाँ बीता था। शुक्रवार, २ अक्टूबर १८८५ ई० के दिन वे ५५ नं० श्यामपुकुर स्ट्रीट के किराये के मकान में आये थे। उनकी यह अन्तिम-लीला भक्तों और साधकों के लिये दुर्लभ सम्पदा है।

यह मकान गोकुल भट्टाचार्य का था। लीला प्रसंग में इस घर का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है, 'उत्तर की ओर मुख करके मकान में प्रवेश करते ही बायीं ओर दाहिनी ओर बैठने का चबूतरा तथा कम चौड़ा एक बरामदा दिखाई पड़ता था। इसके कुछ कदम आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर ऊपर जाने का जीना और सामने आंगन था। आंगन के पूर्व दो-तीन छोटे-छोटे कमरे थे। जीने से ऊपर जाने पर दक्षिण की ओर उत्तर-दक्षिण में बिस्तृत एक लम्बा कमरा था और वहाँ सर्वसाधारण के लिये निर्दिष्ट था तथा बायीं ओर पूर्व-पश्चिम की ओर कमरों में जाने का रास्ता था। इस रास्ते से पहले बैठक के कमरे में जाने का द्वार था। इसी कमरे में श्रीरामकृष्ण रहते थे। इसके उत्तर और दक्षिण की ओर बरामदे थे। उत्तर का बरामदा अधिक चौड़ा था और पश्चिम की ओर दो छोटे कमरे थे। एक में भक्त लोग रात को सोते थे और दूसरा श्रीमाँ के रात्रि-वास के लिये निर्दिष्ट था। इसके अतिरिक्त सर्व-

साधारण के लिए निर्दिष्ट कमरे के पश्चिम में एक कम चौड़ा बरामदा था। श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में जाने के रास्ते के पूर्व की ओर छत पर चढ़ने की सीढ़ियाँ और छत पर जाने के दरवाजे की बगल में चार हाथ लम्बा और चौड़ा एक छायादार चबूतरा था। श्रीमाँ इसी चबूतरे पर दिन भर रहती थीं और श्री रामकृष्ण के लिए आवश्यक पथ्य आदि बनाती थीं।"

घर की सफाई और श्रीरामकृष्ण के रहने की उपयुक्त व्यवस्था करने का दायित्व दाना कालो ने लिया। वह पास ही रहते थे। इस विषय में पूँथी के लेखक लिखते हैं :—

श्री प्रभुर महाभक्त काली पद घोष।
निकटे ताहार बाड़ी बड़ई संतोष ॥

जे बाड़ीते श्री प्रभुर हवे आगूसार।
अग्रणी हइया कर्मे कैला परिष्कार ॥

देव देवी मूर्ति-आँका प्रहक्रय करि।
चाँदिके देआले आटाईल सारि सारि ॥

जाला हाँड़ि खून्ति बेड़ि मादुर आसन।
चाल डाल द्रव्यादि यतेक प्रयोजन ॥

एई सब आयोजन करिबार तेरे।
लईल सकल भार निजेर उपरे ॥

व्यैम तार जनो हम सकले जोगान।
गिरीश सुरेन्द्र मित्र बसु बलराम ॥

हरीश-मुस्तफी नव गोपाल केदार।
चाँई भक्त राम दत्त महेन्द्र मास्तार ॥

श्री प्रभु के महाभक्त काली पद घोष। उनका घर पास ही होने से बड़ा ही संतोष रहा। जिस घर में प्रभु निवास करेंगे। स्वयं उन्होने अग्रणी होकर वहाँ की सफाई कराई। देव देवियों के चित्र खरीदे। चारों ओर की दीवारों पर उन्हें कतार से टंगवाया ॥ वर्त्तन, हाँड़ी, कलछी, संडासी, चटाई आसन। चावल दाल, इत्यादि प्रयोजन के अनुसार। इन सब का आयोजन करने के लिए अपने ऊपर दायित्व लिया ॥ खर्च इन सब में जो हुआ वह सब ने जुटाया। गिरीश, सुरेन्द्र मित्र, बसु बलराम ॥ हरीश मुस्तफी नवगोपाल केदार। बड़े भक्त राम दत्त महेन्द्र मास्टर ॥ खर्च आदि के लिए स्वामी सारदानन्द लिखते हैं, "सुरेन्द्र ने मकान का भाड़ा अकेले ही दिया था और बलराम, राम, महेन्द्र, गिरिशचन्द्र आदि ने मिलकर श्रीरामकृष्ण देव तथा उनके सेवकों के लिए जो कुछ सामग्री आवश्यक हुई, सभी जुटाई।"

नोट :—(1) अब इस मकान के चार हिस्से हो गये है, यथा—५५-अ, ५५-ब, ५५-स और ५५-द। प्रथम दो हिस्सों के बीच जो दालान है उसमें एक ऊँची नालीदार टिन की चादर ने मकान का बँटवारा कर रखा है।

(2) श्री श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग, 3रा भाग, पृ० 223

—प्रथम—

श्री रामकृष्ण ५७ रामकान्त बसु स्ट्रीट में स्थित बलराम भवन में अब स्थान कर रहे थे। वहाँ से पास के ही श्याम पुकुर वाले मकान में आप शाम के समय शुभ मुहूर्त में आ गये हैं। उस दिन शुक्रवार था तिथि—कृष्ण नवमी।

बैठक के कमरे में श्रीरामकृष्ण का बिछौना बिछा हुआ था। वयो ज्येष्ठ रामचन्द्र दत्त दीपक लेकर श्री रामकृष्ण को कमरे की दीवारों पर टँगे चित्रों को दिखाने लगे। श्रीरामकृष्ण ने यशोदा और बाल गोपाल के चित्र देखे। आपने अहिल्या-तारण का चित्र भी देखा। ठाकुर जब श्री चैतन्य के संकीर्तन का एक मनोरम चित्र देख रहे थे, तो नव गोपाल घोष ने कहा, "इस तसवीर में आप अपने आप को देख रहे हैं।"

जब सेवक राखाल आदि रात को खाना खा रहे थे तो ठाकुर वहाँ गये, कुछ वहाँ इधर-उधर

घूमे और सभी के बारे में पूछा। उसके बाद ठाकुर ने मास्टर महाशय से पूछा, "ठण्ढक है क्या ?" मास्टर महाशय ने एक-एक खिड़की को देखा कि ठीक तरह से बन्द है या नहीं। फिर उन्होंने ठाकुर को यह सूचित कर दिया। यह सुनकर ठाकुर को संतोष हुआ। आप बेफिक्र हुए।

—द्वितीय—

श्याम पुकुर में श्री रामकृष्ण की अन्तिम लीला के पूर्व के दृश्य एक के बाद एक प्रकट होने लगे। श्री रामकृष्ण की सेवा तथा देख-रेख के लिए आवश्यक चीजें, सब धीरे-धीरे आ रही थीं। प्रारम्भ से ही रसोई की व्यवस्था की गयी थी। स्वामी अभेदानन्द ने लिखा है, "श्यामपुकुर के मकान में परमहंस देव और हम लोगों के लिए खाना बनाने के वास्ते भक्तिमती सेविका गोलाप माँ आ गई थीं।" स्वामी अदभुतानन्द ने कुछ ऐसा ही कहा है, "वहाँ उन लोगों को खाने-पीने का कष्ट नहीं था। जितने भक्त आते थे, सब टोकरियों में खाने की सामग्री लेकर आते थे। बहुत बार वे (ठाकुर) उन चीजों को गरीबों में बाँट देने के लिए कहते थे।"[२]

आज शनिवार है, ३ अक्टूबर १८८५ ई० कृष्णा दशमी, तिथि पुष्य नक्षत्र। सुबह के समय मास्टर महाशय ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास आये हैं। उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण दो समस्याओं के समाधान के लिए व्यग्र हैं। प्रथम उनके कमरे के दरबाजे और खिड़कियों की दरारों से ठंढ आ रही थी। दरारों को अच्छी तरह बन्द करवाना आवश्यक है। दूसरी समस्या थी—पाखाने में बैठने से ठंड लग रही थी। अतः उसे चटाई से ढकना आवश्यक था। थोड़ी देर बाद गोकुल की माँ की आवाज आयी। वह कमरे के बाहर खड़ी किसी से बात कर रही थी। कौतूहलवश श्रीरामकृष्ण ने मास्टर महाशय से पूछा "देखो, देखो कौन है ?" कुछ समय बाद कमरे की दीवार पर टंगी एक तस्वीर पर श्रीरामकृष्ण की दृष्टि गयी। श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय को) "अहिल्या-तारण के इस चित्र को देखो। आप स्वयं एकाग्रता से उस चित्र को देखते रहे। चित्र ठीक से टंगा नहीं था। ठाकुर ने बतलाया कि किस प्रकार टांगने से ठीक रहेगा।

भक्त कालीपद घोष ने ठाकुर से पूछा, "आपके लिये घी लाऊँ क्या" ?

श्रीरामकृष्ण, "हाँ थोड़ा सा ले आना।"

कालीपद, "नहाने के लिये एक पीढ़ा ?"

श्रीरामकृष्ण, "नहीं, नहीं।"

ठाकुर के दक्षिणेश्वर से चले आने के तीन दिन पहले तालतला के डाक्टर दुर्गाचरण बन्दोपाध्याय ने आपकी परीक्षा कर दवा की व्यवस्था की थी। ठाकुर जितनी बार डाक्टर को पूछ रहे थे, "क्या रोग अच्छा हो जायेगा, उतनी ही बार डाक्टर कहते रहे, "इस दवा को लेकर देखिये।" श्याम-पुकुर में आने के बाद ठाकुर ने लाटू से कहा, "रोग अच्छा होगा या नहीं यह तो बताया नहीं सिर्फ कहता रहा कि दवा लो, वह दवा मैं नहीं लूँगा।"

लाटू—"तो फिर आप वहाँ गये क्यों थे ?"

श्रीरामकृष्ण "अरे वह दक्षिणेश्वर में जो आता रहता था। बहुत बार आया था। अतः एक बार भी (उसके यहाँ) न आऊँ वह ठीक नहीं रहता। उसने कभी बुलाया तो नहीं इसलिए एक बार चला गया। रात के दस बजे वह दक्षिणेश्वर पहुँचकर "हिदे हिदे" करके पुकारता था। उसकी आवाज सुनकर हृदय को कहता, अरे दरवाजा खोल दे। हृदय दरवाजा खोल देता। डाक्टर आकर बैठ जाता पर एक शब्द भी नहीं बोलता था। वापिस जाते समय हृदय को वह कहता, "वहाँ आना।" अर्थात् कुछ दूँगा। डाक्टर ही जानता है कि किन आँखों से उसने मुझे देखा था।"[४]

स्कूल की छुट्टी के बाद तीन बजे के लगभग श्रीरामकृष्ण के पास मास्टर महाशय पुनः आये।

उस समय युवक हरिपद भागवत के ग्यारहवें स्कंध से अहम तत्व को पढ़ कर सुना रहा था।

सनक आदि मुनियों ने प्रश्न किया था, "मनुष्य का मन विषय से भरा रहता है। विषय भी मन को प्रभावित करता है। मुमुक्षु व्यक्ति इस बाधा को किस प्रकार से पार करेगा?" ब्रह्मा इस प्रश्न का उत्तर कहाँ दे पाये? तब देवता लोग विष्णु का ध्यान करने लगे। विष्णु हंस के रूप में अवतीर्ण हुए। देवताओं ने ब्रह्मा को आगे रख कर विष्णु को प्रश्न किया। उस समय भगवान विष्णु ने जो उपदेश दिए थे वहाँ श्री कृष्ण ने उद्धव को बताया था। श्रीकृष्ण ने सांख्य और योग शास्त्र के आलोक में अहम् तत्व की विशेषता को विस्तृत करके बताया। दुखों और कष्टों का मूल ही अहंकार है—अहंकारकृत बन्धमात्मनों हर्ष विपर्ययम।" समस्या के मूल कारण को बतला कर उन्होंने कहा था कि इस का समाधान आत्म विचार और समाधि योग से हो सकता है।

उस दिन रात को मास्टर महाशय श्याम पुकुर में रह गये।

---

१. स्वामी अभेदानन्द : आभार जीवन कथा (बंगाला) पृ०-७१

२. चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय : श्री श्री लाटू महाराजेर स्मृति कथा (बांगला) पृ०-१८६

३. गोकुल भट्टाचार्य

४. चन्द्र शेखर चट्टोपाध्याय : श्री श्री लाटू महाराजेर स्मृति कथा (बांगला) पृ० १८१

तृतीय

रविवार एकादशी, ४ अक्टूबर १८८५ ई०।

सुबह का समय। कुछ चीजें लाने के लिये श्रीरामकृष्ण ने मास्टर महाशय को कहा—दो घड़े, कुल्हड़ और दो पाटे। इस बारे में पिछली रात को भी श्रीरामकृष्ण ने मास्टर महाशय को कहा था, "उन लोगों को बात छोड़ो, तुम्हीं देना।"

उस दिन तीसरे पहर तीन बजे के लगभग श्रीरामकृष्ण के गले के घाव से अचानक खून निकलने लगा। एकदम लाल खून था। उपस्थित सभी लोग घबरा गये। दक्षिणेश्वर से कलकत्ते में उनके आने के पश्चात् यह पहली बार खून निकला था। पहली बार का खून ताजा और एकदम लाल था। कुछ देर बाद दूसरी बार खून निकला। अबकी बार खून गाढ़ा और एकदम काला था। कुछ देर बाद तीसरी बार खून निकला। वहाँ उपस्थित निरंजन, देवेन्द्र नाथ आदि भयभीत और किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। युवक भक्तों के नेता नरेन्द्र नाथ सभी को आश्वस्त करने की चेष्टा करने लगे। श्रीरामकृष्ण के पवित्र तथा पापरहित शरीर में इस भीषण रोग यंत्रणा को देख कर नरेन्द्र नाथ का अन्तःकरण मानो विद्रोह कर उठा। वे मानो विवश होकर ठाकुर से कहने लगे, "आपकी काली—यह सब मस्तिष्क का रोग है (ब्रेन डीजीज) हम लोग भी यह सब काली वगैरह छोड़ देंगे।"

श्रीरामकृष्ण, "और भी कितने रूप देखे हैं। तुझे बताऊँगा।"

बाद में मास्टर महाशय जब श्यामपुकुर आये तो विभिन्न जनों से उन्होंने इस हृदय विदारक घटना को सुना।

२ अक्टूबर को मास्टर महाशय ने बड़े गोपाल को दक्षिणश्वर में ठाकुर के कमरे की मरम्मत के लिये दस रूपये दिये थे। आज उन्होंने रूपये मास्टर महाशय को लौटा दिये। ठाकुर की राय न होने पर मरम्मत का काम रोक दिया गया। उस रात मास्टर महाशय अपने घर चले गये।

रात को बारी-बारी से श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिये नरेन्द्र नाथ ने युवक भक्तों को एकत्रित किया। अक्षय कुमार सेन ने इस सेवा व्यवस्था का चित्रांकन किया है। वह लिखते हैं—

राखाल, योगिन, लाटू, नित्य निरंजन।
बाबूराम, काली, शशी एई कय जन ॥
सेवा पर अविरत रहे रात दिनें।
भक्त माँ गोलाप—माता एकाकी रंधने ॥
एखन नरेन्द्र नाथ प्रभुते पिरोत।
दूगन्हा प्रहर प्रायः गोटा प्रायः उपस्थित ॥
कोथा ओ क्षणेक जन्य हईले बाहिर।
धूरिया फिरिया पुनः स्वस्थाने हाजिर ॥

(राखाल योगीन, लाटू, नित्य निरंजन। बाबूराम, काली, शशी यह कुछ जन ॥ सेवा के लिए रात दिन हर समय ही रहने लगे। भक्त माँ गोलाप-माता अकेली खाना बनाती ॥ इस समय नरेन्द्रनाथ को प्रभु पर प्रेम बहुत होने पर। सारे समय ही वहाँ उपस्थित रहते थे ॥ कहीं यदि बाहर जाते भी तो घूम फिर कर पुनः वापिस आ जाते ॥)

स्वामी सारदानन्द के द्वारा दिये गये तथ्यों से पता चलता है कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण के रात के समय की सेवा का दायित्व युवक भक्तों ने लिया था। वे कहते है, "श्रीयुक्त नरेन्द्र नाथ इस सेवा भार को स्वयं ग्रहण करके रात को यहाँ रहने लगे और अपने दृष्टान्त द्वारा उन्होंने (छोटे) गोपाल, काली, शशी आदि कुछ वलिष्ठ युवकों को उत्साहित करके इस कार्य के लिये आकृष्ट किया। श्रीरामकृष्णदेव के प्रति प्रेम वश, उनके असीम स्वार्थ त्याग, प्रबल उत्तेजनापूर्ण पवित्र वार्तालाप और पवित्र संग से उन लोगों ने भी अपना-अपना स्वार्थ छोड़ कर श्री गुरुदेव की सेवा और ईश्वर लाभ के उच्च उद्देश्य से अपना जीवन नियमित करने का दृढ़ संकल्प किया।"[२] इस विवरण के एक दूसरे अंश से यह ज्ञात होता है कि श्यामपुकुर के मकान में श्रीरामकृष्ण को सेवा के लिए चार-पाँच युवक भक्तों ने अपने आप को अर्पित किया था।

इस प्रसंग में स्वामी अभेदानन्द द्वारा दिया गया तथ्य मूल्यवान है। उन्होंने लिखा हैं, "ठीक उसी समय से (जिस समय श्रीमाँ श्यामपुकुर वाले मकान में आयीं) में भी पूर्ण रूप से अपना घर त्याग कर परमहंस देव की सेवा में नियुक्त हो गया और समय उनके पास रहता था। उन दिनों नरेन्द्र नाथ भी पूरे समय परम हंस देव के पास रहते थे। इस लिए पर्सनल एटेची टू हिज हॉलिनेज श्रीरामकृष्ण इस उपाधि से सब लोग हम लोगों को सम्बोधित करते थे।"[३] उन्होंने और भी लिखा है, "शशी, योगेन, शरत, नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम उस समय तक सब अपने-अपने घर रहते थे और बीच बीच में परमहंस देव को देखने आते थे। तारक दा और नृत्यगोपाल भी उनके साथ बीच-बीच में आते थे। जब कंठ रोग बहुत बढ़ गया तब नरेन्द्र नाथ रोज ही आते और परमहंस देव के पास रहकर उनकी सेवा करते थे।" इस ग्रन्थ के एक दूसरे स्थान में उन्होंने लिखा है, 'श्यामपुकुर के मकान में जितने दिन परमहंस देव थे उतने दिन तक शशी, शरत, योगेन, नरेन्द्र, राखाल, बाबूराम और बूढ़े गोपाल अपने अपने घर से आकर परमहंस देव की सेवा करते थे। परमहंस देव के द्वारपाल के रूप में निरंजन घोष प्रत्येक दिन हम लोगों के साथ रहा करते थे।"

इस विषय में एक दूसरा आधार बैकुण्ठनाथ सान्याल की पुस्तक है। वे लिखते हैं, "हमारें गुरु पुत्र राखालराज, लाटू, गोपाल दादा, योगेन्द्र, निरंजन, छोटे अथवा हुटकों गोपाल हर समय रहा करते थे। सर्वश्रेष्ठ नरेन्द्र नाथ, काली, शरत चन्द्र, शशी भूषण तथा पवित्र सत्ता के बाबूराम आदि अपने अपने घर से स्नान भोजन आदि करके यथा समय सेवा के लिए उपस्थित हो जाते थे।"[४]

सो जो भी हो, ऐसा अनुमान होता है कि इस दिन से ही नरेन्द्र नाथ के नेतृत्व में श्रीरामकृष्ण की सेवा का, विशेषतया रात के समय बारी-बारी से जगे रहने का दायित्व युवक भक्तों ने ग्रहण किया

था। इस प्रसंग में इन युवकों की समस्या ध्यान में रखने योग्य है। तीव्र इच्छा होते हुए भी उन्हें अपने अभिभावकों से प्रबल रुकावट का सामना करना पड़ा था। परन्तु नरेन्द्र नाथ के कुशल नेतृत्व के कारण वे बाधाओं का सफलता पूर्वक सामना कर पाये थे। युवक भक्त शरत चन्द्र (स्वामी सारदानन्द) ने लिखा है, "… … … ठाकुर को रोग वृद्धि के साथ-साथ जब लड़कों ने उनकी सेवा में दिन रात लगे रहकर अध्ययन और अपने घर जाकर भोजन करना तक बन्द कर दिया, तब अभिभावकों के मन में पहले सन्देह और फिर डर पैदा होने से वे अपने-अपने लड़कों को वापस ले आने के लिए उचित-अनुचित विविध उपायों का अवलम्बन करने लगे। कहना न होगा कि नरेन्द्र नाथ का उदाहरण, उत्तेजना और उत्साह के बिना बालक भक्त विघ्न-बाधाओं को अतिक्रमण, करके जीवन के सर्वोच्च कर्त्तव्य पथ में कभी अचल-अटल नहीं रह सकते थे।[7]

---

१ अक्षय कुमार सेन : श्री श्रीरामकृष्ण पूँथि, पृ० ५७८

२. स्वामी सारदानन्द : श्री श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग 3रा भाग पृ० २३०

३. आभार जीवन कथा पृ० ७२

४. आभार जीवन कथा पृ० ७५

५. ,, ,, ,, पृ० ७६

६. वैकुण्ठनाथ सान्याल : श्री श्रीरामकृष्ण लीलामृत २रा संस्करण पृ० १८०

7. स्वामी सारदानन्द, : श्री श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग, 3रा भाग पृ० २३०-२३१।

—चतुर्थ—

आज सोमवार है। ५ अक्टूबर १८८५ ई०

सुबह के समय मास्टर महाशय ने श्यामपुकुर वाले मकान में आकर देखा कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण बिस्तर पर लेटे हुए हैं। सेवक निरंजन आपके पैरों को दबा रहा है।

कुछ समय बाद ठाकुर ने स्नान किया। स्नान के पश्चात जहाँ पर मास्टर महाशय खड़े थे वहाँ आये और मास्टर महाशय को कहा, "एक कन्घी चाहिये।" श्रीरामकृष्ण भण्डार घर में गये। वहाँ मास्टर महाशय भी आप के साथ गये। श्रीरामकृष्ण, "एक बोड़ा चाहिये।" इसी बीच डाक्टर प्रताप चन्द्र मजूमदार आ गये। डाक्टर ने रोग के उपसर्गो को देखा और सोच विचार कर दवा की व्यवस्था कर दी। वार्तालाप के समय श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा, "अर्क लेने पर दस्त लग गया था। इसलिए दुर्गा चरण ने कहा था कि वह आपकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है।" डाक्टर महेन्द्र लाल सरकार प्रसिद्ध चिकित्सक हैं। ठाकुर को उन्हें दिखलाने की बात हुई। शायद डाक्टर प्रताप चन्द्र ने ही यह बात उठायी थी। श्रीरामकृष्ण ने कहा "ना गाय की जीभ (जैसे गाय को जीभ दबा कर पकड़ी हो)—इससे बहुत तकलीफ हुई थी।"

मास्टर महाशय चले गये। तीसरे पहर साढ़े तीन बजे वे पुनः आये। थोड़ी देर बाद वहाँ धीरेन्द्र ठाकुर भी आये।[1] वे श्रीरामकृष्ण की भक्त मण्डली के अनेकों के साथ परिचित थे। उनका दुलार का नाम धोरू था। गोरा रंग, मोटे से, सत्यनिष्ठ धीरेन्द्र नाथ श्रीरामकृष्ण के स्नेह के पात्र थे। धीरेन्द्र नाथ ने श्रीरामकृष्ण को लक्ष्य करके कहा, "महेन्द्र बाबू (महेन्द्र नाथ गुप्त) इतने भक्त हैं, फिर भी उनके दस साल के पुत्र का देहान्त हो गया।[2] उनकी पत्नी का मस्तिष्क खराब हो गया।"

श्रीरामकृष्ण कुछ नहीं बोले, और चुपचाप

मास्टर की ओर देखते रहें।

1. महेन्द्र लाल सरकार ने जब ठाकुर के रोग की परीक्षा की थी, उस समय ठाकुर को बहुत तकलीफ सहनी पड़ी थी। "वचनामृत" में उस दुःखद घटना का वर्णन मिलता है। १२ अक्टूबर १८८५ ई० में श्यामपुकुर वाले मकान में डाक्टर सरकार ने ठाकुर को पहली बार देखा था। परन्तु इससे पहले, अर्थात् २६ सितम्बर को जब ठाकुर दक्षिणेश्वर में ही थे, तब वे डाक्टर सरकार के अस्पताल में गये थे। इस विषय में रामचन्द्र दत्त ने लिखा है, "इस रोग की चिकित्सा के लिए एक बार ठाकुर को डाक्टर के शाँखारी टोला के मकान में ले जाया गया था। "अक्षय कुमार सेन ने लिखा है" इसके कुछ समय पहले डाक्टर के घर श्री प्रभु रोग निरूपण के लिए गये थे। "(पूँथी पृ० ५७८) श्रीरामकृष्ण ने बाद में बताया था," महेन्द्र सरकार ने देखा था, परन्तु जीभ को इतने जोर से दबा दिया था कि तकलीफ हुई। जैसे गाय की जीभ दबा कर पकड़ी हो।

—श्रीरामकृष्ण वचनामृत, तीसरा भाग, पंचम संस्करण पृ० ३०३।

2. ठाकुर परिवार के सदस्य, श्रीरामकृष्ण लीलामृत (बंगला) पृ० ३४४

3. मास्टर महाशय के तीन पुत्र थे—निर्मल चन्द्र, प्रकाश चन्द्र और चारु चन्द्र। आठ साल की उम्र में निर्मल की मृत्यु हो गयी थी।

—पंचम—

आज मंगलवार है, ६ अक्टूबर १८८५ ई०

सुबह आठ बजे के लगभग मास्टर महाशय श्यामपुकुर वाले मकान में श्रीराम कृष्ण के पास आये हैं। पास के किसी मकान में कोई वाद्य संगीत बजा रहा था। यह सुन श्रीरामकृष्ण ने मास्टर महाशय को कहा, "(एक) दस बारह वर्ष की लड़की ने मुझे ऐसा (वाद्य संगीत बजाकर) सुनाया था।"

कुछ देर बाद उन्होंने अपनी पीड़ा के विषय में कहा, "(घाव में) खिचाव आ रहा है।" दर्द की जगह को बताने के लिए आपने मास्टर महाशय को अपना कण्ठ दिखाया। श्रीरामकृष्ण प्रताप डाक्टर के आने की प्रतीक्षा में बीच-बीच में व्यग्र हो रहे थे। रास्ते से एक घोड़ा गाड़ी की आहट पाते ही आप बोल उठे, "वह गाड़ी, वह गाड़ी (आई है)।"

सेवक राखाल ने पुराना घी लगाने की बात कही। आपने इशारे से सहमति बतला दी। लगभग दस बजे मास्टर महाशय विद्यालय चले गये। दोपहर के दो बजे वे वापिस आये। श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय से), "बोड़ा कहाँ?— (काली को) दे दो।"

आज मुर्शिदाबाद से एक वैष्णव भक्त आये हैं। कुछ दिन पहले ही, अर्थात २७ सितम्बर को बलराम भवन में श्रीरामकृष्ण ने उन पर कृपा की थी। भावावस्था में श्रीरामकृष्ण ने अपना चरण कमल उनके वक्षस्थल पर स्थापित कर दिया था। श्रीरामकृष्ण (वैष्णव से) "जप करोगे।"

वैष्णव, "शाम होने दीजिए।"

सुरेन्द्र मित्र ठाकुर के प्रिय भक्त हैं। वे शिमला नामक मुहल्ले में रहते हैं। ठाकुर उन्हें "सुरेन्द्र" अथवा "सुरेश" कह कर पुकारते हैं। सुरेन्द्र के घर दुर्गा पूजा होती थी, पर बीच में कुछ साल पूजा बन्द रही थी। इस साल उन्होंने पूजा करने का संकल्प लिया है। उनके प्राणप्रिय ठाकुर कण्ठ रोग से पीड़ित हैं। उनसे यह देखा नहीं जा रहा था। इसी लिए वे आ नहीं रहे थे। आज वे श्यामपुकुर के मकान में पहली बार आये है।

श्रीरामकृष्ण की चरण बन्दना कर उन्होंने कहा, "दुर्गापूजा के आयोजन के लिए व्यस्त था। इसलिये आ नहीं पाया।"

श्रीरामकृष्ण "ठीक है,"

सुरेन्द्र, "व्यस्तता की बात भी नहीं——— बस आ ही नहीं पाया।"

श्रीरामकृष्ण, "ठीक है।"

शाम के सात बजे देवेन्द्र नाथ, मास्टर महाशय आदि ठाकुर के पास उपस्थित हैं। श्रीरामकृष्ण अपनी पीड़ा के बारे में बोले, "(मानो) चाकू भोंका जा रहा है।" थोड़ी देर तक श्रीरामकृष्ण बात करते रहे, फिर बोले, कान के पास (दर्द) हो रहा है—ऐसा क्यों ?"

ऐसा अनुमान है कि "केन्सर कण्ठ से आपके शरीर के दूसरे भागों में फैलता जा रहा था, विशेषतया कान की ओर फैल रहा था।

देवेन्द्रनाथ, "अब और अधिक नहीं फैलेगा।" श्रीरामकृष्ण, "जैसे (बाबू) अपनी गद्दी में लौट आता हैं।"

सेवक निरंजन ने स्वयं को पहरेदार नियुक्त किया है। अचानक वे कमरे में आये और भक्तों को कहने लगे, "सब लोग उठिये—अब और भीड़ नहीं।"

---

(1) श्रीरामकृष्ण ने कहा, "— — — नेपाल से एक लड़की आयी थी। इसराज बजाकर उसने बहुत अच्छा गाया। भजन गाती थी। किसी ने पूछा क्या तुम्हारा विवाह हो गया है ? उसने कहा," अब और किसकी दासी बनूँ—एक ईश्वर की दासी हूँ।
(श्री श्रीरामकृष्ण बचनामृत, 3रा भाग, ५वां संस्करण, पृ० ३७)

स्वामी विवेकानन्द का कर्मयोग

डॉ० प्रभा भार्गव
बीकानेर

भारतीय दर्शन में मुक्ति को जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। स्वामी विवेकानन्द की भी मान्यता रही है कि मानव का मुख्य लक्ष्य मुक्ति है। वे कहते हैं "एक परमाणु से लेकर मनुष्य इस पृथ्वी पर की सर्वोच्च सत्ता मानवात्मा तक, जो कुछ हम इस विश्व में प्रत्यक्ष करते हैं, वे सब मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह समग्र विश्व इस मुक्ति के लिए संघर्ष का ही परिणाम है। प्रत्येक मिश्रण में प्रत्येक अणु दूसरे परमाणुओं से पृथक होकर अपने स्वतन्त्र पथ पर जाने की चेष्टा कर रहा है' पर दूसरे उसे आबद्ध करके रखे हुए हैं। हमारी पृथ्वी सूर्य से दूर भागने की चेष्टा कर रही है तथा चन्द्रमा, पृथ्वी से। प्रत्येक वस्तु में अनन्त विस्तार की प्रवृत्ति है। इस विश्व में हम जो कुछ देखते हैं, उन सबका मूल आधार मुक्ति लाभ के लिए यह संघर्ष ही है····चेतन तथा अचेतन प्रकृति का लक्ष्य यह मुक्ति ही है, और जाने या अनजाने समस्त जगत् इसी लक्ष्य की ओर पहुँचने का यत्न कर रहा है।" उन्होंने मुक्ति की व्याख्या स्पष्ट करते हुए कहा "सीमित और स्वार्थमुक्त संसार का त्याग ही मुक्ति है। "अत: जो भी मार्ग इस संकुचित सीमा से और देशकाल निमित्त के बन्धन से निकालने में समर्थ हो वही योग है। स्वामीजी ने भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग को साधन मार्गो के रूप में स्वीकार किया। सच्चे और निष्कपट भाव से ईश्वर की

खोज को भक्तियोग कहा एवं भक्तिमार्ग को स्वभाविक एवं सहजमार्ग माना। वे साधनक्रम में राजयोग को भी उपयोगी समझते थे। योग के यम नियमादि अष्टांगों का क्रमिक पालन करते हुए एवं मन की समस्त शक्तियों को अर्न्तमुखी बनाते हुए आत्म स्वरूप को अवभाषित करने का जो मार्ग है वही राजयोग है। इस ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र उपाय है एकाग्रता। भावुकता से शून्य व्यक्तियों के लिए ज्ञानयोग का विधान किया। ज्ञान योग का उद्देश्य वही है जो भक्तियोग और राजयोग का है किन्तु प्रक्रिया भिन्न है। यह योग दृढ़ साधकों के लिए है, उनके लिए जो न तो रहस्यवादी हैं, और न भक्तिप्रेमी वरन् बौद्धिक हैं। भक्तियोग प्रेम और भक्ति द्वारा, कर्मयोग कर्म द्वारा पूर्ण एकता की सिद्धि के मार्ग को खोजता है तथा ज्ञान योग विशुद्ध बुद्धि द्वारा ईश्वर साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करता है। परन्तु स्वामीजी ज्ञान, भक्ति और कर्म को सर्वथा असम्बन्ध भाग नहीं मानते। वे साधनों के प्रति समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं।

स्वमीजी ने साधन मार्ग के रूप में कर्मयोग के महत्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया कि कर्मयोग का अभिप्राय कुशलता के साथ अर्थात् वैज्ञानिक प्रणाली से कार्य करने की विधि' निष्काम कर्म द्वारा मानव जीवन के चरम लक्ष्य इस मुक्ति को प्राप्त कर लेना ही कर्मयोग है। प्रत्येक स्वार्थ-रहित कार्य, वचन और विचार हमें इसी ध्येय की ओर ले जाता है। अतः कर्मयोग, निस्वार्थपरता और सत्कर्म द्वारा मुक्ति-लाभ करने का एक धर्म और नीतिशास्त्र है। कर्मयोगी के सम्मुख लक्ष्य होता है निःस्वार्थता की उपलब्धि और उसको अपने प्रयत्न द्वारा ही उसे प्राप्त करना होता है। समस्या का समाधान किसी विश्वास, विचार, मत और सिद्धान्त की सहायता की अपेक्षा कर्म द्वारा संभव बनाना होता है।

स्वामीजी का दर्शन कर्म पर सर्वाधिक बल देता है। इसकी विशेषता यह है कि वह केवल चिन्तन को नहीं अपितु कर्मठ मनुष्य को भी अपनी ओर आकर्षित करता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति कर्म करता है। कर्म करना उसका स्वभाव है और इसके परे कोई हेतु नहीं हैं। वस्तुतः स्वामीजो का चिन्तन क्रियावादी है। अतः वे कहते हैं "केवल वही व्यक्ति सबकी अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है जो पूर्णतः निस्वार्थी हो, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्त्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायेगा तो वह भी एक बुद्ध बन जायेगा और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकठ होगी जो संसार की अवस्था को सम्पूर्ण रूप से परिवर्तित कर सकती है। वह व्यक्ति कर्मयोग के चरम आदर्श का प्रतीक है।

वस्तुतः स्वामीजी गीता के ही निष्काम कर्मयोग सिद्धान्त को मानते थे कि आसक्तिपूर्वक किया गया कर्म ही बन्धन का हेतु होता है। परन्तु पूर्णज्ञान और पूर्णानन्द प्राप्त कर लेने पर मनुष्य आसक्ति से मुक्त हो जाता है। उसे किसी वस्तु की चाह नहीं रहती। वह लाभ-हानि और हर्ष विषाद से प्रभावित नहीं होता। वह अनासक्त होकर कार्य कर सकता है। जिसको पूर्णज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई उसे आत्मशुद्धि के लिए कर्म करना चाहिए। उनकी मान्यता थी कि अहंकार और स्वार्थ के बन्धन से क्रमशः मुक्त होने के लिए निष्काम कर्म आवश्यक हैं न कि निष्क्रियता। जो तत्त्व ज्ञान या मुक्ति पा चुका है उसे भी अन्याय एवं बन्धन ग्रस्त जीवों के उपकारार्थ निःस्वार्थकर्म करना चाहिए। शुद्ध चित्त निष्काम मुक्त पुरुष का जीवन और आचरण समाज के लिए आदर्श होता है। उनसे कुकर्म हो ही नहीं सकता। वे लोक-सेवा को मुक्ति के पथ में बाधक नहीं प्रत्युत् साधक समझते हैं।

स्वामीजी को पलायन द्वारा मुक्ति का सिद्धान्त सर्वथा अप्रिय था। वे कहा करते थे कि "संसार

में डूबकर कर्म का रहस्य सीखो—संसार यंत्र के पहिये से भागो मत। उसके भीतर खड़े होकर देखो वह कैसे चलता है। तुम्हें उससे निकलने का मार्ग अवश्य मिलेगा। संसार का त्याग करो' वाक्य में जो रहस्य निहित है उसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं "संसार में रहो परन्तु उसमें सीमित, संकुचित और स्वार्थपूर्ण दृष्टि से मत रहो। संसार में रहो, परन्तु संसार के होकर मत रहो। इसका अर्थ यह नहीं कि हमें आलसी होकर मिट्टी के ढेले की भांति पड़े रहना होगा। वेदान्त हमें कर्म से कभी विरत नहीं करता। यदि मुक्त पुरुष ही कार्य नहीं करेगा तो संसार को मार्ग प्रदर्शित कौन करेगा? जो व्यक्ति भोग विलास में मग्न है या जो संसार को कोसता हुआ वन को चला जाता है और वहाँ अपने शरीर को धीरे-धीरे सुखाकर अपने को मार डालता है वह व्यक्ति लक्ष्य भ्रष्ट और पथभ्रष्ट है। जब तुम्हारे लिए सभी ब्रह्मभाव हो गया तब तुम्हें संसार छोड़ने की क्या आवश्यकता है? 'आत्मनो मोक्षार्थम् जगत हिताय च' कर्म करना ही संन्यासी का वास्तविक लक्ष्य है। स्वामीजी की धारणा थी कि व्यक्ति दृढ़ संकल्प होकर सतत् कर्मरत रहे पर फल की कामना न करें क्योंकि फलों में आसक्ति से मन की शक्ति नष्ट हो जाती है। निरन्तर कर्म करने से अनुभव होता है कि कर्म के पीछे भी कुछ है। कभी कर्म हमें महान बन्धनों में डाल देते हैं। अतः सत्कर्मों की नाम-यश की आकांक्षा के बन्धनों से परे रहे। उन्होंने कर्मफलशक्ति को त्यागने का उपाय फलों को ईश्वरार्पित करना बतलाया। मन मस्तिष्क और इन्द्रियादि से कार्य करे परन्तु उन पर उसका प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहिए। व्यक्तिगत और स्वार्थपूर्ण कर्मों को त्याग कर परार्थ कर्म करना ही उचित है। परार्थ किया हुआ निःस्वार्थ कर्म कदापि बन्धन कारी नहीं हो सकता। कार्यकारण या देशकाल में सीमित होकर क्षुद्रशरीर की कामनाओं की वृद्धि हेतु किया कर्म ही बन्धन होता है। सारतः अनासक्तभाव से कर्म करने पर हमें वही स्थिति प्राप्त हो सकती है जो ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के साधकों को होती है।

स्वामीजी ने अद्वैत वेदान्त के निवृत्तिमार्ग की अपेक्षा समयानुकूल प्रवृत्ति मार्ग का अवलम्बन किया, वे इस दलील को ठुकरा देते हैं कि इस जन्म में प्राप्त भौतिक सुख सुविधाओं को त्यागकर मनुष्य अगले जन्म में शाश्वत सुख भोग सकता है। इसी के आधार पर शताब्दियों तक हिन्दू समाज में व्याप्त सामाजिक भेदभाव और अत्याचार को न्यायोचित ठहराया जाता रहा। वे कहते हैं "मैं ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो स्वर्ग में तो मुझे आनन्द देगा किन्तु इस संसार में मुझे अन्न भी नहीं दे सकता।" क्रियावाद की स्थापना करते हुए वे स्पष्ट करते हैं कि वेदान्त हमसे यह नहीं कहता कि हम अपने को असहाय मानकर अत्याचारी के समक्ष घुटने टेक दें। वह कहता है कि अपना मस्तक ऊँचा करो। तुममें से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक ईश्वर विद्यमान है। उसके योग्य बनो।

स्वामीजी के कर्मयोग के सन्देश ने मातृभूमि की निष्काम सामाजिक और राजनीतिक सेवा के लिए भी देशवासियों को प्रेरित किया। उनका विचार था कि एक सच्चे वेदान्ती को अपने मनुष्य पर गर्व होना चाहिए। समाज के उच्चवर्ग ने निम्नवर्ग का शोषण कर पददलित, पीड़ित एवं पदाक्रान्त बना दिया। अतः उन्हें अब मानव देव बनाने का आह्वान करने लगे। वे चुनौती भरे शब्दों में कहते हैं कि "यदि मेरे भीतर ईश्वर है तो मैं संसार की लांछनाएँ क्यों सहूँ? उन्हें मिटाना ही उनका कर्त्तव्य रहा। जनता के विकास के बिना राजनीतिक मुक्तिकरण संभव नहीं। सच्चे कर्मयोगी को तो स्वार्थ त्याग कर लोक मंगलकारी प्रवृति अंगीकार करते हुए राष्ट्र, के उत्थान में सकारात्मक भूमिका अदा करनी चाहिए। वे कहते

है—"राष्ट्र के रूप में हम अपना व्यक्तित्व खो बैठे हैं और यही इस देश में सब दुष्कर्मों की जड़ है। हमें देश को उसका खोया हुआ व्यक्तित्व वापिस देना है और जनता का उत्थान करना है। हिन्दू मुसलमान, ईसाई सभी ने उसको अपने पैरों तले कुचला है! किन्तु अब उसके उत्थान की शक्ति भी भीतर से ही आनी चाहिए।"

वे उत्कट देशभक्त थे देश के प्रति उनका अगाध प्रेम और सम्मान का भाव था। तत्कालीन समाज की दुर्दशा के लिए उन्होंने ब्रिटिश सम्राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से कटु आलोचना की। राष्ट्रवादियों को अन्याय पूर्ण व्यवस्था का प्रतिकार करने के लिए उन्होंने शक्ति और निर्भयता का सन्देश दिया। शक्ति के अभाव में अपने अधिकार एवं अस्तित्व की रक्षा करना असंभव है। उनकी दृष्टि में शक्ति ही धर्म है। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि स्वतन्त्रता का प्रकाश विकास की एकमात्र पूर्व शर्त है। स्वतन्त्रता मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होना तथा दूसरों को उसकी ओर उन्मुख करने में सहायता देना मानव का सबसे बड़ा पुरस्कार है। जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास में बाधा डालते हैं वे हानिकारक हैं और उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयास करना चाहिए। उन संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाय जिनके द्वारा मनुष्य स्वतन्त्रता के मार्ग पर आगे बढ़ता है।

निष्कर्षत: उनके कर्मयोग की अवधारणा ने देश में उदासीनता निष्क्रियता, प्रमाद, आलस्य तथा भाग्यवादिता के स्थान पर शक्ति की सर्वोच्चता, निर्भयता, पराक्रम, उत्साह तथा उत्तरदायित्व की भावनाएँ प्रज्ज्वलित की। देश के सर्वांगीण विकास हेतु चलाये गये धर्म युद्ध में देश के नवयुवक सक्रिय सहयोग देने लगे। निरंकुश एवं आततायी राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिकार करने के लिए आत्मोत्सर्ग हेतु वे तत्पर हो उठे। इस प्रकार उनका कर्मयोग चिन्तन राजनीतिक स्वायतत्ता की प्राप्ति हेतु जीवनदायी और गतिशील रहा।

फुफकार

(एक जातक कथा)

— श्री सच्चिदानन्द बच्चन

अमराइयों में
बालकों ने देखा है—
पोखर के पास पास
पत्थरों के झुरमुट बीच
दौड़ रही पगडंडी,
सूनी सूनी सी,
काल का बसेरा है।

एक अनजान पथिक को
पगडंडी पर जाते देख
उन बालकों ने रोका-
"महाराज मत जाना पगडंडी पर
वहाँ काले नाग का डेरा है
निष्कंटक, वह
अहम् के नशे में चूर

अन्तर में रोष लिए
विष पिये कंठ में
काट खाता है अकारण
निरीह को
अन्तहीन यात्रा पर
मौन जाते देखा है
लौट जाओ
वहां मृत्यु का अंधेरा है"।

नहीं नहीं,
मुझे भय नहीं कराल का
शब्दों का ताना बाना बुन
सम्मोहित कर दूँगा नाग को,
नहीं तो
मंत्रों के शब्द-रसायन से
विष को पानी पानी कर दूँगा
विखण्डित तत्व का अमृत उसे पिलाऊँगा
मुझे अब जाने दो।

पथिक आगे बढ़ा, और बढ़ा आगे-
अरे !
यह बवण्डर कैसा !
प्रचण्ड आवाज कैसी !
उष्ण प्रवाह कैसा !
छाती पे अड़ा
फन काढ़े
आँखों में दहकते शोले
काँपती जिह्वा की लपक
फुँकार लिए
कौन हो तुम !
नागराज हो
कि, मौतराज !
पहचाना नहीं मुझे ?
तुम्हारे देवाधिदेव का ही अंश-बीज
जीव हूँ मैं, तुम हूँ।
"मैं कुछ नहीं मानता
मत दे मुझे भुलावा
मन को जहर पी लेने दे
लहू का एक घूँट दे दे"।
अरे विधर्मी,
कैलाश से उतरते ही
हुआ तू शंकर से दूर,
उनके भावों से दूर,
उनकी जटा से निकली अमृतधारा से दूर,
भूल गया धर्म ज्ञान !
भूल गया कर्म !
न याद रहा तुझे भक्ति का मर्म
क्षीर सागर का हलाहल क्या तू पी गया था !

शंकर का शान्तरूप क्या भूल गया तू !
तो, ले सम्हल-
'ओम् क्षः ओम् स्वरस्फू...देवेभ्ये फूः'
'झां झां झां हां हां हां हैं हैं हैं'
'ओम् चिटि-चिटि महाचांडालिनी
नागराजम् में वशमानय स्वाहा'

"त्राहिमाम देव, त्राहिमाम
नाहम नाहम नाहम !
ताहि गुरु, ताहि संवम
मेरी रक्षा करो
उद्धार करो
नतमस्तक तेरे चरणों में हूँ
त्राहिमाम"।

आ बेटे,
मेरे सीने से लग जाओ
मुझ में समा जाओ
क्या मिला है तुझे मृत्यु में
क्लेश, बस केवल क्लेश !
धर्म जीवनदान में है
जीवन स्तर को उठाने में है
शिव की पूजा जीव-सेवा में है
आ, समाहित हो जा जीव में
एकीभूत हो जा शिव में।
न पढ़ाऊँगा तुम्हें पंचशील की भाषा

न लगवाऊँगा धर्मनिरपेक्ष का नाश
न पिलवाऊँगा असांप्रदायिकता का घूंट,
संप्रदाय धर्म होता नहीं
पंचशील शीलता होती नहीं
धर्मनिरपेक्ष धर्मसे तटस्थता है, सापेक्षता नहीं।

धर्म सभी धर्मों के अंगीकार में है
दलित-पीड़ित के उद्धार में है
स्वरूपदर्शन की क्रियात्मकता में है
सार्वभौमिक सभ्यता-संस्कृति में है
एकरूपता में है,
भावों के अलगाव में नहीं
ईट-पत्थरों से बने मीनार में नहीं
हृदय की धड़कनों में है
जा, समेट ले सबको अपने आप में।

सबकुछ बदल गया नागराज में-
धर्मशिष्ट
अन्तरमुख
अहिंसा का पुजारी।
बालकों ने अन्तर के परिवर्तन को जाना नहीं;
ढीठता में, शोखपन में
पूँछ से पकड़कर हवा में नचाया
और उछाल दिया अनियति की गुमनामी में
पुजारी को।

दिन बीते एक-अन्तराल का
पगडंडी पर खड़ा गुरु
बाट जोह रहा था भक्त की,
आवाज लगायी नाग की
मगर, मृत्यु सी खामोशी में
गूँजती रही प्रतिध्वनि नाग...नाग...नाग की
तब कहीं तन्द्रा टूटी,
लड़खड़ाता, ससरता, फन गिराये
आ खड़ा हुआ गुरु के चरणों में।

यह कैसी दशा बनायी है अपनी!
रुग्ण, लाचार!
हाड़-हाड़ तेरा दिख रहा है
अस्थिपंजर
मरणासन्न
क्या ग्रसित था रोग में?

"नहीं महाराज,
कुछ तो हुआ नहीं मुझे
स्वस्थ हूँ।
हाँ, एकबार बालकों ने खेल-खेल में चक्राकार घुमाकर फेंका था,
हड्डियों की चोट से थोड़ा पीड़ित
पथ्यापथ्य पर हूँ।
मगर, दीक्षा का मान नहीं तोड़ा
भूला नहीं धर्म का पक्ष
अविचलित हूँ,
हिंसा से दूर, बहुत दूर
मंत्रों में मग्न
भक्ति के भावराज में हूँ"।

अरे जड़,
बन बैठा तू अष्टावक्र!
अष्टावक्र तो ज्ञानी था
तू मूरखभक्त बन बैठा?
मैंने काटखाने को मना किया था,
फुफकारने को तो नहीं?
तेरी एक फुफकार से तो
धर्मराज के भी होश उड़ जाएँ,
इसमें अधर्म कहाँ?

अरुणाचल की सौम्य ज्योति : रमण महर्षि

ब्रह्मचारी अमर

क्या ज्योति सौम्य भी हो सकती है ? तो उत्तर में कहेंगे कि हाँ ! श्री रामकृष्ण कहा करते थे कि मणि की ज्योति नेत्रों को दग्ध नहीं करती। उसकी स्निग्ध शीतल आभा जहाँ आलोक प्रदान करती है वहीं आँखों के लिए विश्रामदायक है। ऐसी ही एक परम दिव्य ज्योति प्रकटित हुई सुदूर दक्षिण भारत के पावन तीर्थ अरुणाचल पर्वत की पुण्य परिधि में जिसने सम्पूर्ण आध्यात्मिक आकाश मण्डल को अपनी सौम्य प्रभा से आज तक दीप्तिमान कर रखा है। अध्यात्म की यह समुज्ज्वल ज्योति प्रकट हुई इस युग के अन्यतम महापुरुष श्री रमण महर्षि के अलौकिक जीवन एवं कृतित्व के रूप में।

भारत पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक पवित्र तीर्थों से सुमण्डित है। इन तीर्थों के साथ जुड़ी है किसी न किसी दैवी अवतारी पुरुष अथवा परम भागवत सन्त की अलौकिक जीवन गाथा। दक्षिण भारत का परम पवित्र अरुणाचल पर्वत समस्त श्रद्धालुओं के लिए भगवान शिव का साक्षात् ज्योतिर्मय विग्रह है। इस पवित्र पहाड़ की चोटी पर प्रत्येक वर्ष अग्नि प्रज्वलित कर भक्तों द्वार प्रतीकात्मक रूप से परमात्मा की प्रकाश-विग्रह में पूजा की जाती है। यही पावन अरुणाचल सुदीर्घ काल तक भक्तों के उत्साह एवं आनन्द संवर्धन के लिए, भगवान रमण महर्षि की साधना तपस्या एवं लीला प्रकाशन का केन्द्र बना रहा।

रमण महर्षि कौन थे ? वे अरुणाचल से कैसे सम्पृक्त हुए ?

मद्रास तथा कन्याकुमारी के मध्यवर्ती मार्ग पर अपने भव्य मन्दिर के लिए प्रख्यात मदुराई नगर है। वहाँ से तीस मील दक्षिण में तिरुचुली ग्राम है जो प्राचीन शिव मन्दिर से शोभा मण्डित है। इस शिव मन्दिर के निकट सुन्दरम अय्यर अपनी पत्नी अलगम्माल के साथ जीवन यापन कर रहे थे। अपना जीवन एक सामान्य लेखाकार (अकाउन्टेन्ट) के रूप में प्रारम्भ कर क्रमशः उन्नति करते हुए वे वहाँ के स्थानीय 'मजिस्ट्रेट' की अदालत में 'प्लीडर' के रूप में मुकदमों की पैरवी करने लगे। सुन्दरम अत्यधिक उदार एवं अतिथि परायण व्यक्ति थे। कहते हैं कि सुन्दरम अय्यर के वंश पर एक अभिशाप था कि प्रत्येक पीढ़ी में उसके परिवार का एक सदस्य गृहत्यागी साधु हो जायेगा। उनके किसी पूर्वज ने किसी महात्मा की अवज्ञा की थी जिसने उनका द्वार छोड़ते समय यह शाप दे दिया था। कुछ भी हो, परिवार को दिया गया यह शाप अन्ततः सारे जगत के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ जिसने अध्यात्म पिपासुओं को महर्षि रमण के रूप में एक अमूल्य रत्न प्रदान किया। एक माता एवं एक पत्नी के रूप में रमण महर्षि की माता एक धार्मिक, सहिष्णु एवं सेवा परायण आदर्श भारतीय नारी थीं। अपने माता पिता की द्वितीय सन्तान श्री रमण महर्षि का जन्म ३० दिसम्बर १८७९ के दिन हुआ। यह दिन नटराज शिव के साथ सम्बद्ध एक अत्यन्त पवित्र एवं शुभ दिवस है। बालक का नामकरण हुआ 'वेंकट-रमण' जो कालक्रम में संक्षिप्तीकृत होकर 'रमण' हो गया। इसके दो भाई और थे; इनसे दो वर्ष

बड़े नागास्वामी तथा ६ वर्ष छोटे नागासुन्दरम। इसके दो वर्ष पश्चात इनको एक मात्र बहिन अलामेलु का जन्म हुआ। यह एक लघु व शान्तिपूर्ण एवं सन्तुष्ट परिवारिक वातावरण था। मध्यम वर्गीय। शान्त एवं नीरव ग्राम्य परिवेश से पूर्णतया तादात्म्य। सम्पन्न बालक के रूप में रमण ने अपना जीवन प्रारम्भ किया।

गाँव के मन्दिर के एक भाग में संचालित प्राथमिक विद्यालय में रमण ने पढ़ना शुरू किया। बाद में वे डिन्डिगल भेजे गये। कालक्रम से इनका परिवार मदुराई चला गया जहाँ वे पहले 'स्कॉट्स मिडिल स्कूल' तथा बाद में 'अमेरिकन मिशन हाई स्कूल' में अध्ययन करने लगे। रमण एक उदासीन छात्र थे। पढ़ने लिखने में उन्होंने विशेष रुचि नहीं दिखलायी। किन्तु मुक्केबाजी, कुश्ती, तैराकी व अन्य खेलकूदों में ये दक्ष थे। उनका शरीर स्वस्थ, बलवान एवं हृष्ट-पुष्ट था। नींद असामान्य रूप से गहरी थी। यद्यपि अध्ययन में इनकी विशेष रूचि नहीं थी तथापि स्मरणशक्ति असाधारण, तथा मस्तिष्क चुस्त एवं जागरूक था। विद्यार्थी जीवन में ऐसी कोई सम्भावना नहीं दिखती थी कि वे आगे चलकर एक महान ऋषि एवं तत्व-वेत्ता बनेंगे।

वेंकट रमण की आयु केवल बारह वर्ष की थी तब इनके पिता का देहान्त हो गया। घर में कोई उचित आयु का वयस्क संरक्षक न होने से इनकी माता अपने भाई, (रमण के मामा), सुब्बियार के यहाँ मदुराई चली आयी जहाँ रमण ने 'मिडिल' व 'हाई-स्कूल' में शिक्षा प्राप्त की। पिता की मृत्यु से रमण के जीवन-दर्शन एवं दृष्टिकोण में गहरा अन्तर आया, यद्यपि उनके बाहरी जीवन में इसका कोई चिह्न प्रकट नहीं हुआ।

सन् १८९६ के अन्तिम चरण में जबकि इनकी आयु सोलह वर्ष की थी रमण को अपनी उस भावी जीवन का पहला संकेत प्राप्त हुआ जिसने उन्हें एक सामान्य स्कूली छात्र से महर्षि में परिवर्तित कर दिया। एक दिन उनके घर उनके एक बुजुर्ग सम्बन्धी मिलने आये। रमण ने कौतूहल-वश पूछ लिया 'आप कहाँ से आये हैं ?' सम्बन्धी ने प्रत्युत्तर में जैसे ही कहा "अरुणाचल से" रमण के चित्त में एक अद्भुत चामत्कारिक प्रतिक्रिया हुई। 'अरुणाचल' शब्द ने उन्हें भाव से अभिभूत कर दिया तथा वे विभोर होकर कह बैठे 'क्या! अरुणाचल से! यह कहाँ है?" उनकी अन्तरात्मा ने कह दिया कि अरुणाचल कोई महान सत्ता है। एक और घटना ने उन्हें अन्तर्मुख बनाकर अपने अस्तित्व की गहराइयों में डूब जाने के लिए प्रेरित किया। इनके मामा अपने स्वयं के पढ़ने के लिए एक पुराण ले आये थे जिसमें ६३ शैव सन्तों की जीवन गाथा अंकित थी। यह प्रथम धार्मिक पुस्तक थी जो रमण ने पढ़ी। बाह्य रूप से कोई तैयारी न होने पर भी पुस्तक ने उनकी आत्मा में संसार-त्याग व भक्ति की भावना कूट-कूट कर भर दी, जो कि सन्त जीवन की अपरिहार्य एवं सारभूत आवश्यकता है। जिस आध्यात्मिक अनुभूति के लिए वे उत्कट अकांक्षा कर रहे थे वह अनपेक्षित रूप से उनको प्राप्त हुई सन् १८९६ के मध्य में जबकि इनकी आयु सतरह वर्ष थी। एक दिन वे अपने मामा के घर पहली मंजिल पर एकान्त में अकेले बैठे थे। पूर्णतया स्वस्थ थे किन्तु अकस्मात् उन्हें मृत्यु के भय ने आक्रान्त एवं पूर्णतया अभिभूत कर दिया, असंदिग्ध भाव से। उन्हें लगा कि बस वे मरने जा रहें हैं। इस सम्पूर्ण भावना एवं घटना-क्रम के बीच उनके अन्तर की कोई वस्तु अविचलित रही तथा पर्यवेक्षण करती रही। वह शान्त भाव से विचार करने लगे 'अब मृत्यु आ गयी है। इसक अर्थ क्या है? वह क्या वस्तु है जो मर रही है? यह शरीर मरता है।' वह अपने शरीर के अंगों को सीधा कर लेट गये मानों मृत्यु के चिह्न प्रकट हो रहें हों। उन्होंने अपनी श्वाँस रोक ली तथा

होंठ कसकर बन्द कर लिये मानो वे सचमुच में केवल एक शव हों। उन्होंने सोचा अब क्या होगा? उनकी विचार-प्रक्रिया इस प्रकार चलने लगी :

"अच्छा! अब यह शरीर मृत है। यह श्मशान ले जाया जायेगा व चिता में भस्म कर दिया जायेगा। किन्तु शरीर की इस मृत्यु के साथ क्या मैं भी मर गया हूँ? क्या यह शरीर मैं हूँ? यह इस समय मौन व जड़ है किन्तु मैं अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व की सत्ता को पूर्णतया अनुभव कर रहा हूँ, यहां तक कि 'मैं' की ध्वनि भी जो इस शरीर से अलग है। अतः मैं इस शरीर से ऊपर एवं अतिरिक्त चैतन्य सत्ता हूँ। शरीर मरता है किन्तु चेतना जो इस शरीर से पृथक है वह मृत्यु द्वारा नहीं छुई जा सकती। इसका अर्थ है कि मैं मृत्यु से परे—अमर्त्य आत्मा हूँ—चेतन आत्म-सत्ता हूँ।"

स्वयं महर्षि रमण के अनुसार यह केवल विचार प्रक्रिया नहीं थी, वरन् सब कुछ उन्हें एकाएक प्रत्यक्ष अनुभूति के रूप में ज्ञात हुआ। उनकी चेतना में एकाएक कौंध कर यह सब प्रत्यक्ष ज्ञात हुआ। यह वृहतर सत्ता 'मैं' ही एक मात्र सत्य सार वस्तु है। मृत्यु का भय एकाएक सदैव सदैव के लिए तिरोहित हो गया। इस प्रकार युवा रमण ने अपने आपको आध्यात्मिक अनुभूति के चरम शिखर पर पाया। वह भी बिना किसी कठिन व लम्बी तपस्या या शिक्षण के बिना : आत्म-जागृति की इस बाढ़ में अहंभाव कहीं बह गया। अचानक तरुण रमण एक महर्षि एवं तत्ववेत्ता के रूप में प्रस्फुटित हो उठा। यह २९ अगस्त सन् १८९६ की बात है।

तरुण ऋषि के जीवन में आमूलचूल परिवर्त्तन परिलक्षित हुआ। जिन चीजों को पहले वे महत्व प्रदान करते थे वे अर्थहीन हो गयीं। जिन आध्यात्मिक मूल्यों की ओर से उदासीन थे वे अब उनका सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करने लगे। पाठशाला का अध्ययन, मित्रमण्डली, सगे सम्बन्धियों की ओर से वे बिल्कुल उदासीन हो गये। अपने परिवेश से पूर्णतया तटस्थ लगने लगे। विनम्रता, सौजन्य, निर्लिप्तता तथा अन्य दैवी सद्गुण उनके चरित्र में लक्षित होने लगे। वे मीनाक्षी मन्दिर में अकेले देवी देवताओं के समक्ष घण्टों अश्रु-धारा पूर्ण भांवांजली अर्पित करने लगे।

वेंकट रमण की परिवर्तित जीवन-दृष्टि एवं व्यवहार उनके बड़े भाई की तीक्ष्ण एवं जागरूक दृष्टि से छुपी न रह सकी। वे उन्हें जब भी भावस्थ या ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे देखते, प्रवृत्ति में प्रेरित करने के विचार से, व्यंग्यपूर्वक ऋषि या योगी कहकर सम्बोधन करते तथा कहते कि ऐसे व्यक्ति के लिए जनशून्य अरण्य ही उपयुक्त निवास-स्थल है। एक दिन रमण शिक्षा के द्वारा दिये गये गृह कार्य को छोड़कर, अन्तर्मुख ध्यानस्थ बैठे थे, कि इनके भाई ने डाँटने के विचार से कहा 'ऐसे व्यक्ति के लिए इन सब बातों की क्या उपयोगिता है।" रमण ने कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि वास्तव में अब यह जीवनशैली उनके लिए अयथार्थ एवं असम्भव है। अतः उन्होंने घर छोड़ने का निश्चय किया। अचानक उनके मानस में अरुणाचल उद्भासित हो उठा। उनके भाई जाने में वाधा डालेंगे, इस विचार से उन्होंनें वहाना बनाकर कहा कि वे स्कूल में एक विशेष कक्षा में उपस्थित होने जा रहे हैं। भाई ने उन्हें स्कूल की फीस जमा करने हेतु पाँच रुपये ले जाने के लिए कहा। रमण ने अनुमान लगा कर देखा कि तिरुवन्नामलाई तक पहुँचने में प्रायः ३ रु० खर्च में आयेगा। उन्होंने तीन रुपये मात्र लेकर घर से अरुणाचल के लिए चुपचाप प्रस्थान किया। जाते समय वे एक संक्षिप्त टिप्पणी सन्देश रूप में छोड़ गये जिसका भावार्थ था : 'मैं अपने पिता की खोज में उनकी आज्ञानुसार जा रहा हूँ। चूँकि वह एक सत्कार्य को उन्मुख हुआ है अतः इस कार्य के लिए कोई सोच न करे। उसकी (स्वयंकी) खोज के लिए धन खर्च न किया जाय। स्कूल की फीस नहीं दी गयी है।

बचे हुए दो रुपये यहाँ रखे हैं।"

यह एक महाभियान था। रमण ने दोपहर को अपने मामा का घर छोड़ा और रेलवे स्टेशन तक आधा मील पैदल गये। उन्होंने दो रुपये तेरह आने में रेल टिकट ले लिया तथा बचे हुए तीन आने जेब में रख लिये। ट्रेन में एक मौलवी ने उन्हें बतलाया कि यदि वे विल्लुपुरम पर गाड़ी बदल लें तो तिरुवन्नमलाई पहुँच सकेंगे। संध्या के समय उन्हें भूख लगी तो उन्होंने आधा आने में दो नाशपातियाँ खरीद लीं। चामत्कारिक रूप से फल का पहला टुकड़ा खाते ही उनकी क्षुधा शान्त हो गयी! सुबह तीन बजे रेल जब विल्लुपुरम पहुँची रमण उतर पड़े व आगे का रास्ता उन्होंने पैदल चलने का निश्चय किया। दिन निकलने पर वे कस्बे में गये तथा तिरुवन्नामलाई जाने वाले मार्ग का संकेत-पट ढूंढने लगे। उन्हें मम्बलापट्टू मार्ग का संकेत चिन्ह दिखाई दिया किन्तु मम्बलपट्टु तिरुवन्नामलाई जाने के मार्ग में पड़ता है यह उन्हें मालूम न था। थके हारे व भूखे वे एक होटल पर पहुँचे किन्तु उन्हें दोपहर तक भोजन की प्रतीक्षा करनी पड़ी। भोजन तैयार होने पर उन्होंने ग्रहण किया व दो आने चुकाने चाहे। होटल के मालिक ने यह जानकर कि उनके पास केवल ढाई आने हैं, पैसा लेने से मना कर दिया तथा उन्हें यह भी बताया कि मम्बलपट्टु तिरुवन्नामलाई के मार्ग पर ही है। स्टेशन वापिस जाकर रमण ने ढाई आने का टिकट मम्बलपट्टु के लिए खरीदा व यात्रा जारी रखी। दोपहर के बाद वे ट्रेन द्वारा मम्बलपट्टु पहुँचे तथा वहाँ पैदल ही तिरुवन्नामलाई के लिये चल पड़े। दस मील चलने के बाद वे एक विशाल चट्टान पर बने मन्दिर पर पहुँचे। शाम हो चुकी थी। वे मन्दिर में प्रविष्ट होकर– नाट्यमण्डप में एक स्थान पर बैठ गये। वहाँ पर उन्होंने दिव्य दर्शन किया कि एक पवित्र तेजपुंज ने समस्त स्थान को आच्छादित कर रखा है। कुछ समय पश्चात् वह दिव्य प्रकाश लुप्त हो गया। रमण देर रात तक गहरे ध्यान में निमग्न हो गये। मन्दिर के पुजारियों ने मन्दिर के पट बन्द करने के समय उन्हें जगाया तथा बतलाया कि उन्हें प्रायः पौन मील दूर स्थित एक अन्य मन्दिर में पूजा-सेवा के लिए जाना है। वेंकट रमण उनके पीछे-पीछे चले तथा दूसरे मन्दिर में पहुँच कर पुनः समाधिस्त हो गये। पूजा समाप्त कर पुजारियों ने उन्हें फिर से जगाया किन्तु उन्हें भोजन के लिए कुछ नहीं दिया। मन्दिर का वाद्य वादक जो पुजारियों का रूखा व्यवहार देख रहा था, उसने उनसे अपने भाग का भोजन वेंकट रमण को दे देने की प्रार्थना की। जब वेंकट रमण ने पीने के लिए जल की याचना कि तो उन्हें थोड़ी दूर पर स्थित एक ब्राह्मण का घर दिखा दिया गया। रमण वहाँ पहुँचकर बेहोश होकर गिर पड़े। चेतना आने पर उन्होंने देखा कि एक छोटी सी भीड़ उन्हें घेर कर कौतूहल से देख रही है। वहाँ वे जल पीकर तथा कुछ खाने के बाद लेट गये व गहरी नींद में सो गये।

दूसरे दिन रमण प्रातः उठ बैठे। ३१ अगस्त १८९६ का दिन था। उस रोज जन्माष्टमी थी। रमण ने अपनी यात्रा फिर शुरू की, काफी देर चलने के बाद वे थक गये व उन्हें क्षुधा अनुभव हुई। वह कुछ भोजन चाहते थे, उसके बाद यदि सम्भव हो तो रेल द्वारा तिरुवन्नामलाई जाना चाहते थे। सहसा उनके ध्यान में आया कि वह अपने कान में पड़ी सोने की बालियों के बदले यात्रा के लिए पैसा जुटा सकते थे। वे एक मकान के सामने जाकर खड़े हो गये। वह एक मृत्थुकृष्णा नामक भागवत पण्डित का मकान था। उन्होंने भागवत पण्डित से भोजन माँगा तो उन्होंने गृह-स्वामिनी (अपनी पत्नी) के पास भेज दिया। भागवत पण्डित की पत्नी जन्माष्टमी के शुभ दिन एक तरुण तपस्वी को भोजन सेवा से तृप्त कर अत्यन्त आह्लादित हुई।

इसके पश्चात वेंकट रमण ने भागवत पण्डित को बताया कि वे यात्रा पूरी करने के लिए, चार रुपये के एवज में अपने कान की स्वर्ण बालियाँ धरोहर रखना चाहते हैं। बालियाँ कहीं अधिक मूल्यवान थीं किन्तु वेंकट रमण को इतने ही पैसे की आवश्यकता थी। भागवत पण्डित ने बालियों के बदले वे राशि उन्हें दे दी तथा उनका पता लिख लिया। एक चिट पर अपना पता लिखकर देते हुए समझाया कि वे अपनी बालियाँ कभी भी वापस ले जा सकते हैं। गृहस्वामिनी ने जन्माष्टमी के अवसर पर भगवान कृष्ण के लिए बनायी गयी मिठाइयों में से कुछ मिठाइयाँ एक डब्बे में बाँधकर रमण को रास्ते के लिए दीं। वेंकटरमण ने दम्पत्ति से विदाई ग्रहण की तथा पण्डित का पता लिखा हुआ पुर्जा फाड़कर फेंक दिया। रात उन्होंने रेलवे स्टेशन पर बितायी तथा अगली सुबह, १ सितम्बर १८९६ को तिरुवन्नामलाई की ट्रेन में सवार हो गये। वहां पहुँचते ही वे अरुणाचलेश्वर के मन्दिर के लिए शीघ्रता से चल पड़े। मन्दिर के पट, द्वार खुले पड़े थे किन्तु मन्दिर बिल्कुल सूना पड़ा था। वेंकट रमण मन्दिर के गर्भगृह में प्रविष्ट होकर जैसे ही पिता अरुणाचलेश्वर के सामने खड़े हुए वे अनिर्वचनीय आनन्द एवं भाव से पूर्णतया आविष्ट हो गये। महाभियान पूर्ण हुआ। उनका पोत सुरक्षापूर्वक तट पर आ लगा था।

महर्षि रमण का शेष जीवन तिरुवन्नामलाई में ही बीता। वे औपचारिक रूप से संन्यास में भी कभी दीक्षित नहीं हुए। जब वे मन्दिर से निकलकर बाहर सड़क पर चल रहे थे किसी ने पुकार कर कहा कि क्या वे मुंडन करवाना चाहते हैं? हाँ कहने पर वे अय्यनकुलम नामक तालाब पर ले जाये गये तथा वहाँ मुण्डन होने के पश्चात वे तालाब की सीढ़ियों पर खड़े रहे। उन्होंने बचे हुए पैसे व मिठाई का डब्बा तालाब में फेंक दिये तथा वहाँ से लौटते हुए वे स्नान करने का विचार कर ही रहे थे कि भारी वर्षा ने उनके शरीर को भलीभाँति प्रक्षालित कर दिया।

यह एक महायात्रा ही कही जायेगी।क्योंकि महर्षि ने कोई पूर्व योजना नही बनायी। घटनायें स्वयं घटित होती रहीं तथा पवित्र अरुणाचल जो कि अद्वैत अनुभूति का जागृत दृश्यमान प्रतीक है रमण को बरबस अपनी ओर आकर्षित करता रहा। रमण के जीवन में अद्वैतानुभूति, गृहत्याग अरुणाचल-वास सभी कुछ दैवी प्रेरणा से हुआ। उन्होंने 'मैं शरीर हूँ' इस भावना को हृदय से त्याग दिया था। अतः इसके बाद जो भी घटनाएँ उनके जीवन में हुईं वे सभी दैव संचालित थीं।

प्रथम कुछ सप्ताह रमण ने तिरुवन्नामलाई के विशाल मन्दिर के हॉल में बिताये। अनन्त की अनुभूति में डूबे हुए, अपने परिवेश से पूर्णतया अभिभूत वे हॉल में एक स्थान पर पूर्णतया मौन एवं निश्चल बैठे रहा करते थे। जब वहाँ कुछ शरारती लड़के उन पर पत्थर फेंकने लगे तथा परेशान करने लगे तो पहले वे निर्लिप्त रहे बाद में हॉल के नीचे तलघर में एक उपेक्षित मन्दिर में जा बैठे। शिवलिंग के पीछे दीवाल से सटकर अनन्त सत्ता में लीन निश्चल बैठे रहते थे। दिन बीतते जा रहे थे। मच्छर, चींटें, कीड़े मकोड़े उनके शरीर को काटते रहे किन्तु उन्हें इसका ज्ञान नहीं था। मन्दिर की दीवार पर उनकी पीठ व जांघों से बह रहे रक्त व मवाद से धब्बे पड़ गये थे। जब शरारती लड़कों को उनके तलघर में होने का पता चला वे उन पर पत्थरों की वर्षा करने लगे। किसी दैवी प्रेरणा से एक फकीरी हालत में रह रहे साधु ने शरारती बच्चों को रमण से दूर भगाने का भार अपने पर ले लिया। साधु का नाम शेषाद्रि था। शेषाद्रि पागलों की तरह व्यवहार करते थे, गन्दे कपड़े पहने रहते थे किन्तु फिर भी जो लोग यह जानते थे कि वे कौन हैं उनको सम्मान देते थे व उनके अप्रत्याशित व्यवहार को

सहा करते थे। वस्तुतः शेषाद्रि चामत्कारिक शक्तियों से सम्पन्न एक महायोगी थे। शेषाद्रि, वेंकट चला मुदलाई तथा एक अन्य साधु की सहायता से बाद में रमण को सुब्रमण्यम मन्दिर में उठाकर ले जाया गया जहाँ वे दो महीने रहे। वे प्रायः समाधि में लीन रहा करते, कभी कभी सामान्य चेतना के स्तर पर आया करते थे। कुछ सप्ताह पश्चात रमण मन्दिर की वाटिका मे चले गये जहाँ किसी भी एक वृक्ष के नीचे गहरी समाधि में निमग्न बैठे पाये जाते थे। नवम्बर तथा दिसम्बर वार्षिकोत्सव पर जबकि अरुणाचल पर्वत की चोटी पर पवित्र अग्नि प्रज्वलित की जाती थी, हजारों की संख्या में भीड़ उमड़ आती थी। बहुतों का ध्यान तरुण ऋषि की ओर आकर्षित हुआ तथा इसी समय रमण को प्रथम स्थायी भक्त उदण्ड्डी नायनार के रूप में मिला। उन्होंने रमण महर्षि की सेवा शुरू की। दूसरे साधु अन्नामलाई तम्बीरन जो कि एक छोटे से गुरुमूर्तम के महन्त थे उनके सन्निध्य में आये। उनके सुझाव पर रमण ऐकान्तवास की दृष्टि से फरवरी १८९७ में गुरुमूर्तम चले आये। रमण पूर्ववत आत्म स्वरूप में लीन रहे। उनके सिर पर जटाएँ हो गयीं। नाँखुन वढ़कर टेढ़े हो गये। वे मूर्तिमान रूप तपस्या बन गये। बिना किसी विज्ञापन के उनका यश चारों ओर फैल गया। लोग हजारों की संख्या में उनका दर्शन करने एवं आशीर्वाद लेने आने लगे। भीड़ को थोड़ी दूर रखने के लिए बाँसों का एक बाड़ा बनाना आवश्यक हो गया। उदण्ड्डी नायनार को अपने गुरुस्थान पर आने का आदेश मिला। वे शीघ्र आऊँगा यह कहकर गये किन्तु फिर एक वर्ष नहीं लौट सके। रमण महर्षि की देख भाल करने वाला कोई नहीं रहा। भोजन की कोई समस्या नहीं थी। शीघ्र ही दैवी व्यवस्था ने पालानीस्वामी के रूप में इस आवश्यकता को पूर्ण कर दिया। पालानीस्वामी केरल के युवा साधक थे जो एक गणेश-मन्दिर में पूजा करते थे। लोगों ने उन्हें गुरुमूर्तम जाकर रमण महर्षि के जीवन विग्रह में परमेश्वर की पूजा करने की सलाह दी। गुरुमूर्तम पहुँचकर महर्षिको देखते ही पालानीस्वामी ने उन्हें अपने आध्यात्मिक संरक्षक व प्रचेता के रूप में पहचान लिया। लगातार २१ वर्षों तक रमण महर्षि के सान्निध्य में रहकर उन्होंने सम्पूर्ण निष्ठा से उनकी सेवा की।

किसी भी प्रकार के दिखावे, पूजा, आडम्बर या श्रेष्ठता प्रतिपादित करने वाली औपचारिकता, भेद भाव पूर्ण व्यवहार के महर्षि आन्तरिक रूप से विरुद्ध थे। एक बार अन्नामलाई तिम्बरन ने देव विग्रह के समान ही महर्षि की साँगोपाँग पूजा एवं अभिषेक करने की उत्कट इच्छा प्रकट की। महर्षि ने इसकी तनिक भी अनुमति नहीं दी तथा कोयले से दीवार पर लिख दिया कि 'इसके लिए केवल इस पूजा की ही आवश्यकता है' अर्थात महर्षि के लिए केवल भिक्षा की सेवा ही पर्याप्त थी। किन्तु इस घटना से लोग यह जान गये कि महर्षि पढ़ना लिखना जानते हैं। उनके एक वेंकटरामा अय्यर नामक भक्त ने जो तिरुवन्नामलाई के तालुका कार्यालय में मुख्य लेखाकार 'हेड अकाउन्टेन्ट' थे बहुत अनुनय विनय हठ व आग्रह करके महर्षि का नाम तथा वे कहाँ के हैं यह जान लिया। अंग्रेजी में महर्षि ने अपना नाम तथा गाँव का नाम कागज पर लिख दिया। अब भक्त लोगों को यह भी पता चल गया कि महर्षि अंग्रेजी पढ़ व लिख सकते हैं। तिरुवन्नामलाई के लोग अब यह भी जान गये थे कि तरुण ऋषि कौन हैं और कहाँ के हैं।

लगभग अठारह महीने गुरुमूर्तम मन्दिर में रहने के बाद श्रीरमण पालानीस्वामी के साथ निकट के एक आम के बगीचे में चले गये। बगीचे के मालिक ने महर्षि को भीड़ से बचाने के लिए पूरा बगीचा उनके लिए सुरक्षित कर दिया था। द्वारपाल को कड़े आदेश दे दिये गये थे कि बिना अनुमति के किसी को भी बगीचे में प्रविष्ट न होने दिया जाय। पालानीस्वामी अपने गुरु महर्षि से

वेदान्त पढ़ने को उत्सुक हुए क्योंकि उनके गुरु श्री रमण वेदान्तिक सत्य के मूर्तिमान स्वरूप थे। यद्यपि श्री रमण ने स्वयं बिना कोई भी वेदान्त की पुस्तक देखे ही सत्य का साक्षात्कार किया किन्तु पालानीस्वामी के कोटि के साधकों के लिए वेदान्त ग्रन्थों का अवलोकन आवश्यक था। वे पास के कस्बे के पुस्तकालय से तमिल भाषा में वेदान्त के ग्रन्थ ले आया करते थे और महर्षि रमण के समक्ष पढ़ा करते थे। यद्यपि पलानीस्वामी का तमिल ज्ञान अति सीमित एवं स्वल्प था क्योंकि मातृभाषा मलयालम थी किन्तु फिर भी वे कैवल्यनवनीतम्' 'वेदान्त चिन्तामणि' तथा 'वशिष्ठम्' जैसी गूढ़ार्थ पुस्तकों से जूझा करते थे। पहले वे सस्वर बोलकर पाठ करते थे किन्तु बाद में श्री रमण स्वयं ही ग्रन्थों को देख कर उनका सार-संक्षेप पालानास्वामी को समझा दिया करते। यह उनके लिए सहज था क्योंकि उनकी स्वानुभूति से मेल खाता था। ६ महीने की इस अवधि में पालानीस्वामी को जहाँ श्री रमण जैसे अनुभूति-सम्पन्न महपुरुष से वेदान्त समझने का विरल अवसर मिला वहीं श्री रमण को वेदान्त ग्रन्थों से परिचित होने का सुयोग मिल गया। इसी स्वाध्याय व सत्चर्चा से महर्षि को कालान्तर में भारत एवं विदेश से आये कई साधकों एवं जिज्ञासुओं को उपदेश व मार्ग निर्देशन देने में महत्वपूर्ण सहयोग मिला।

जिस समय श्री रमण अपना घर छोड़कर आये थे उनकी माँ अपने सम्बन्धियों से मिलने गयी हुई थीं। जब उनको रमण के अज्ञात स्थान पर चले जाने के विषय में ज्ञात हुआ, वे दुःख एवं पीड़ा से विह्वल हो उठीं। रात्रि दिवस अश्रुपात करना ही उनके लिए शेष रह गया। कहीं से सुना गया कि वेंकट रमण ने एक नाटक पार्टी में योगदान कर लिया है जो इस समय त्रिवेन्द्रम में आयी है। सुनकर उन्होंने अपने एक सम्बन्धी नेलईअप्पा अय्यर से अपने पुत्र को लौटा लाने के लिए कातर प्रार्थना की। नेलइअप्पा अय्यर त्रिवेन्द्रम जाकर असफल लौट आये। जब अलगम्माल स्वयं वहाँ गयीं तो उन्होंने नाट्य-संस्था के लोगों में से एक तरुण वय के लड़के को शीघ्रता से चले जाते देखा। उसे भ्रम से वेंकटरमण समझकर तथा यह कल्पना कर कि वे उनसे दूर रहना चाहते हैं वे अत्यन्त दुखी भग्नहृदय से मनमदुराई लौट आयी। जब उनके एक अन्य सम्बन्धी की मदुराई में मृत्यु हो गई तो नेलइअप्पा अय्यर शव-यात्रा में सम्मिलित होने आये। वहीं श्री रमण के विषय में सटीक सूचना मिली। उन्होंने शव-यात्रा में ही किसी व्यक्ति को कहते सुना कि मदुराई में तम्बीरन नामक एक साधु तिरुवन्नामलाई के किसी युवा तपस्वी की ज्वलन्त शब्दों में प्रशस्ति कर रहे थे तथा बाद में और जानकारी भी मिली कि साधु का नाम वेंकट रमण है तथा वे तिरुचुली के रहने वाले हैं। सुनकर नेलईअप्पा अय्यर अपने एक मित्र के साथ तिरुवन्नामलाई पहुँचे। वहाँ के रहने वालों से पूछताछ करने पर उन्हें वह आम का बगीचा ढूढ़ निकालने में अधिक कठिनाई नहीं हुई जहाँ महर्षि रमण निवास कर रहे थे। बगीचे के मालिक ने किन्तु उन्हें यह कह कर बगीचे में जाने की अनुमति नहीं दी कि तरुण संन्यासी के एकान्त सेवन व ध्यान में बिघ्न डालना उचित नहीं होगा। नेलइअप्पा अय्यर के यह कहने पर कि वे साधक के सम्बन्धी हैं मालिक पर कोई असर नहीं हुआ। केवल वे इस बात के लिए सहमत हुए कि नेलईअप्पा अय्यर लिख कर सन्देश भेजना चाहें तो भेज सकते हैं। नेलइअप्पा अय्यर ने एक कागज के टुकड़े पर केवल इतना लिखा "नेलइअप्पा अय्यर प्लीडर, मनमदुराई, साक्षात्कार का इच्छुक है।" महर्षि ने सन्देश को पढ़ा तो समझ गये कि उनके चाचा उनकी खोज में आये हैं। उन्होंने कागज की पिछली ओर देखा तो पाया कि रजिस्ट्रेशन विभाग का कागज है जिस पर कुछ कार्यालय सम्बन्धी विवरण लिखित है। हस्तलिपि को देखकर वे

पहचान गये कि यह उनके भाई नागास्वामी का है, इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि उनके बड़े भाई को रजिस्ट्रेशन विभाग में नौकरी मिल गयी है। उन्होंने अभ्यागतों को अन्दर बुलाने की अनुमति दी। भावना से परिपूर्ण हृदय लेकर नेलइअप्पा अय्यर ने भीतर जाकर अपने भतीजे को बाह्य-जगत से अनभिज्ञ स्थिति में बैठे देखा। यह एक अद्भुत मिलन था। नेलइअप्पा अय्यर ने अपने अल्हड़ व मस्त भतीजे के स्थान पर एक जटाधारी, अस्नात, बड़े-बड़े नख वाले तपसमूर्ति निर्वाक निस्पन्द बिना किसी परिचिति के चिह्न के बैठे देखा। जब नेलईअप्पा अय्यर ने श्री रमण को अपनी उपस्थिति से पूर्णतया उदासीन देखा तब वे पालानीस्वामी तथा बगीचे के स्वामी से पूर्ण भावना, कोमलता एवं स्नेह से बोले कि मैं अपने भतीजे को एक ऋषि के रूप में रूपान्तरित देखकर बहुत हर्षित हूँ किन्तु उनकी शारीरिक दशा देखकर पीड़ित हूँ। मैं तथा अन्य परिवारी जन कोई भी यह नहीं चाहते कि वे अपना साधु जीवन त्याग दें। वे हमारे साथ मदुराई आकर हमारे पड़ोस में स्थित देवालय में रहें, जहाँ हम उनके शरीर के लिए आवश्यक सेवा प्रदान कर सकें। महर्षि पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं हुआ और उनके चाचा को लौट जाना पड़ा। उन्होंने श्री रमण की माता को यह शुभ संवाद लिख भेजा कि उनका पुत्र मिल गया है किन्तु लौटने के लिए उसे सहमत नहीं किया जा सका। इसके कुछ समय पश्चात ही श्री रमण आम का बाग छोड़कर अइयना कुलम ताल के पश्चिम में स्थित एक छोटे से मन्दिर में चले आये। वहाँ एक महीने तक रहने के बाद वे पवित्र पर्वत के पूर्वी भाग पर स्थित पवलव-कुनरू नामक सुन्दर मन्दिर में चले आये। यहीं पर उनकी माता उनके भाई नागास्वामी के साथ पहली बार उनसे वापिस लिवा ले जाने की आशा मिलने आयी। पहाड़ी पर चढ़कर उन्होंने देखा कि रमण एक शिला पर लेटे हुए हैं। रोती, बिलखती, झुंझलाती उनकी माता कई दिनों तक घर लौटने का आग्रह करती रही किन्तु श्री रमण ने न तो कोई प्रत्युत्तर दिया, न ही अपना मौन तोड़ा। अन्त में एक भक्त के याचनापूर्ण आग्रह करने पर उन्होंने एक कागज पर लिखा "परमात्मा प्रत्येक व्यक्ति के प्रारब्धानुसार विधान करते हैं। सर्वदा सब वस्तुओं का। जो नहीं होना नियत है वह नहीं होगा चाहे कितना भी प्रयास किया जाय और जो होना निश्चित् है वह होने से नहीं रुकेगा चाहे मार्ग में कितनी ही बाधाएँ उपस्थित की जायँ। क्योंकि यह असंदिग्ध सत्य है, अतः चुप रहना ही श्रेयस्कर है।" उनकी माता निराश व अत्यन्त दुःखी हो वापस लौट गयीं किन्तु उनका शुभ प्रारब्ध उनके कालक्रमानुसार श्री रमण के दिव्य सन्निध्य में फिर से ले आया जिसमें वे जीवन के अन्तिम क्षण तक रहे।

जीवन प्रवाह चलता रहा। श्री रमण को तिरुवन्नामलाई में आये हुए दो वर्ष से अधिक हो चुके थे। इस बीच जिन लोगों ने उनका जीवन देखा उन्होंने यही समझा कि वे तपश्चर्या में हैं किन्तु बाद में जैसा कि स्वयं महर्षि ने बताया कि उनका ऐसा कोई भी संकल्प या प्रयास नहीं था। जो भी घटित हुआ वह उनकी प्रत्यक्षानुभूति की सहज परिणति थी। यह परानुभूति की सहज अवस्था थी। ठीक भी है। आप्तकाम कृतकृत्य महापुरुष के लिए कोई विधि निषेध, नियम, संकल्प या व्रत नहीं बच रहता। आत्मसिद्धि के बाद साधनों का कोई महत्व नहीं रह जाता। प्रारब्धानुसार ही वे सामान्य जीवन के अपवाद स्वरूप जीवनशैली में जी रहे थे और प्रारब्धानुसार ही वे बाद में सामान्य जीवन धारा से जुड़कर चलने, फिरने, बोलने, खाने, पीने, पढ़ने लिखने की सहज क्रियायें फिर से करने लगे।

माता अलगम्माला तथा भाई नागास्वामी के चले जाने के शीघ्र बाद ही श्री रमण पवलाक्कुनरु छोड़कर अरुणाचल पर और ऊपर चले आये तथा वीरुपाक्ष गुफा जो कि एक उपेक्षित गुफा थी में

रहने लगे। पालानीस्वामी उनके साथ थे, वे गुफा को स्वच्छ एवं आवास योग्य स्थिति में रखते थे। गुफा एक मठ के अधीन थी किन्तु उसके ट्रस्टी लोग आपस में मतान्तर के कारण मुकदमें में लगे हुए थे। विरूपाक्ष गुफा में भक्तों का अविरल प्रवाह आने लगा यह देखकर गुफा के स्वत्वाधिकारियों ने दर्शनार्थियों पर कर लगा दिया। महर्षि ने इसे असमीचीन समझ कर गुफा त्याग दी व खुले स्थान में रहने लगे। किन्तु खुले स्थान पर भी कर लगा देने पर महर्षि के पास इसके अलावा कोई विकल्प न रहा कि वे परिसर त्याग कर थोड़ी दूर पर स्थित एक अन्य गुफा में चले जाएँ। महर्षि के विरुपाक्ष गुफा त्याग देने पर मठ के संरक्षकों ने उनसे प्रार्थना की कि वे गुफा में लौट आयें, जब तक वे वहाँ निवास करेंगे, किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जायेगा। इस पर महर्षि पुनः विरूपाक्ष गुफा में लौट आये।

सन् १९०० से १९१६ तक विरुपाक्ष गुफा ही श्री रमण की आवास स्थली रही। यहाँ उनकी जीवन पद्धति पूर्वानुसार ही रही। वे आत्म-मग्न बैठे रहते तथा सब प्रकार के दर्शनार्थी, जिज्ञासु व साधक उनके पास आते रहते। इनमें प्रारम्भ में आने वाले दो साधक थे गम्भीरम् शेषैया तथा शिव प्रकाशम् पिल्लई। शेषैया नगरपालिका के ओवर-सियर थे तथा पिल्लई दर्शनशास्त्र में स्नातक व साऊथ अरकॉट कलक्टरी में सेवारत थे। इन्होंने समय-समय पर महर्षि के समक्ष दशन एवं साधना सम्वन्धी नाना प्रश्न रखे।

विरूपाक्ष गुफा में निवास के प्रारम्भिक दिनों में वे कभी कभी पद्मनाभ स्वामी (जटाई स्वामी) के पास जाया करते थे। इनके पास संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा संग्रह था। वे वहाँ संस्कृत ग्रन्थों का अवलोकन करते तथा उन्हें स्मृति में धारण कर लेते। रमण की स्मरण एवं धारण शक्ति छात्रावस्था से ही असाधारण थी।

एक बार एक विद्वान गुफा में 'विवेकचूड़ामणि' की संस्कृत में एक प्रति छोड़ गये। श्री रमण ने उसका अवलोकन किया। पालानीस्वामी द्वारा लाये तमिल भाषा में भी इस ग्रन्थ का अवलोकन किया व बाद में इसका गद्यानुवाद भी किया। लगभग इसी समय काव्यकण्ठ गणपतिशास्त्री नाम के संस्कृत विद्वान, मन्त्र शास्त्र मर्मज्ञ एवं जपनिष्ठ साधक श्री रमण के निकट आये। वे कवि, मन्त्रज्ञ एवं अन्नत कोटि के साधक थे किन्तु उन्हें शान्ति एवं समाधान नहीं प्राप्त हुए थे। गणपतिशास्त्री ने पूछा 'तपस' क्या है ? क्योंकि वेदान्त शास्त्रों के यथेष्ट आलोड़न एवं आप्राण जप कर के भी मैं यह नहीं समझ पाया कि 'तपस' क्या है ?" श्री रमण ने उत्तर दिया—

"अगर कोई यह निरीक्षण करता है कि 'में' का भाव कहाँ से उठ रहा है तो मन वहाँ लीन हो जाता है, यही तपस है। जब मन्त्र जप किया जाता है उस समय यदि कोई निरीक्षण करे कि मन्त्र-ध्वनि कहाँ से उठ रही है तो मन का वहाँ लय हो जाता है, यही तपस है।" एकाएक गणपति शास्त्री के अन्तर्चक्षु खुल गये तथा उन्होंने महर्षि की कृपा को साक्षात् अनुभव किया। उन्होंने ही श्री रमण को 'महर्षि' एवं 'भगवान' कहकर सम्बोधित करना शुरू किया तथा उनकी प्रशस्ति में संस्कृत में स्तुतियाँ रचीं। उन्होंने भगवान श्री रमण की शिक्षाओं को संस्कृत में 'रमण-गीता' रचकर छन्द बद्ध किया।

यहाँ एक अद्भुत चमत्कारपूर्ण घटना को अंकित करना अप्रासंगिक न होगा। रमण महर्षि से भेंट होने के एक वर्ष बाद गणपति शास्त्री एकान्त में गहन साधना एवं तपस्या करने के लिए तिरुवोरीयूर गये। वहाँ वे एक गणेश मन्दिर में रह कर अपनी साधना, जप एवं तपस्चर्या में अठारह दिन का मौन व्रत धारण कर, लग गये। अठारहवें दिन जब वे पूर्ण जागृत चेतनावस्था में लेटे हुए थे उन्होंने रमण महर्षि की आकृति को भीतर

आकर अपने पास बैठते हुए देखा। यह एक सुखद आश्चर्य था। उन्होंने उठने की कोशिश की किन्तु रमण महर्षि ने अपने हाथ से उनके मस्तक को दबाये रखा था, अतः वे उठ न सके। गणपति शास्त्री ने एक प्रबल शक्ति धारा को अपने समस्त शरीर में से गुजरते हुए अनुभव किया। उन्होंने इसे एक प्रकार की स्पर्श द्वारा दीक्षा मानी किन्तु रमण महर्षि सितम्बर १८९६ में जब से तिरुवन्नामलाई आकर रहने लगे थे, कभी भी अपना स्थान छोड़कर कहीं भी नहीं गये थे। गणपति शास्त्री ने अक्टूबर १९२९ को महर्षि की उपस्थिति में जब इस घटना का उल्लेख किया तब उन्होंने कहा—

"कुछ वर्षों पहले एक दिन जब मैं पूरी तरह जगा हुआ लेटा था, मैंने स्पष्टतः अपने शरीर को क्रमशः ऊपर और ऊपर उठते हुए अनुभव किया। जैसे-जैसे मेरा शरीर ऊपर उठता गया नीचे के स्थूल दृश्य पदार्थ धीरे-धीरे छोटे दीख पड़ने लगे जब तक कि वे आँखों से ओझल न हो गये। वहाँ एक तीव्र ज्योतिर्मय प्रकाश का विशाल परिवृत मेरे चारों ओर था। कुछ समय पश्चात् मैंने शरीर को धीरे-धीरे नीचे उतरते हुए अनुभव किया तथा नीचे का दृश्य, स्थूल वस्तुएँ पुनः दीखने लगीं। मैं इस घटना के समय इतना चेतन था कि मैं यह सोचने लगा कि सिद्धि-सम्पन्न योगी लोग इसी प्रकार बहुत कम समय में दूर-दूर तक चले जाते हैं। जब शरीर भूमि पर उतरा तो मुझे यह भान हुआ कि मैं तिरुवोरोयूर में हूँ ,यद्यपि मैंने वह स्थान पहले कभी नही देखा था। मैंने अपने को एक ऊँचे रास्ते पर चलते हुए पाया; मैंने कुछ दूरी पर एक गणेश मन्दिर देखा, मैं वहाँ गया और मन्दिर में प्रविष्ट हो गया। उसी क्षण मैं उस भाव-जगत से जाग उठा, वह अन्तर्धारा टूट गयी और मैंने अपने को वीरुपाक्ष गुफा में लेटे हूए पाया। मैंने तुरन्त यह घटना पालानीस्वामी को, जो सदा मेरे साथ रहते थे, बतलाई।"

यद्यपि यह एक चमत्कार था किन्तु रमण महर्षि ने इसे परिहास में लेकर कहा कि शायद सिद्धियाँ इसी प्रकार अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करती हैं। कुछ भी हो, भक्त लोग समय-समय पर इस प्रकार कृपाशक्ति एवं अनुग्रह की अभिव्यक्ति द्वारा लाभान्वित होते रहे। महर्षि पूर्ण तटस्थ रहते थे।

केवल विद्वान पण्डितों ने ही नहीं बल्कि सरल अनपढ़ लोग भी जिनकी महर्षि में अटूट श्रद्धा थी, उनके कृपानुग्रह को अनुभव करते थे। कितने ही लोगों ने कितने ही चमत्कार पूर्ण अनुभव करते हुए रमण महर्षि के दर्शन किये किन्तु चमत्कारों की महत्ता को महर्षि ने कभी स्पष्ट स्वीकारोक्ति नहीं दी। लोगों ने अपनी आँखों से बाघ चीते जैसे हिंसक पशुओं के उनकी उपस्थिति में निर्द्वन्द विचरते देखा। महर्षि भी पूर्ण शान्त एवं निर्भीक रहा करते थे। उनके द्वन्द्वातीत जीवन के अनेक उदाहरण मिलते थे। जहाँ शेषाद्रि जैसे स्नेही एवं संरक्षक भाव वाले साधु उनके जीवन में आये वहीं कुछ ढोंगी, पाखण्डी एव दुष्ट प्रकृति के लोगों ने उनको कई प्रकार से कष्ट पहुँचाये। इनमें बालानन्द नाम का एक पाखण्डी व्यक्ति उल्लेखनीय है। वह रमण से अधिक वयस का प्रौढ़ व्यक्ति था किन्तु उनसे ईर्ष्या व द्वेष रखता था। श्री रमण के पास आने वाले भक्त एवं दर्शनार्थियों के सामने वह श्री रमण से बड़े एवं पूज्य व्यक्ति होने का भाव दिखाता था। एक बार अपने महर्षि को मारने का प्रयास करते हुए ऊपर पहाड़ से एक चट्टान उनकी ओर लुढ़का दी परन्तु देवविधान से महर्षि सुरक्षित रहे। एक बार अन्य अवसर पर उसने श्री रमण पर थूक दिया। महर्षि निर्विकार रहे किन्तु अन्ततोगत्वा अनुचित कार्य करने के प्रतिफल स्वरूप बालानन्द को स्वयं यह स्थान छोड़ना पड़ा।

इसी प्रकार एक अन्य साधु महर्षि के पास आया और बोला कि 'मैं तुम्हें दत्तात्रय मन्त्र में दीक्षित करूँगा। श्री रमण ने कोई प्रतिउत्तर नहीं

दिया। इस बार वह बोला कि 'परमात्मा ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिया है तथा तुम्हें मन्त्रपदेश करने के लिए कहा है।' इस बार रमण महर्षि ने मुख खोला और कहा कि "जब भगवान मुझे भी दर्शन दें तथा आपसे मन्त्र ग्रहण करने के लिए कहें तब मैं आपसे आदेश लूँगा।'

एक बार ध्यान करते समय उस साधु ने श्री रमण को ध्यान में देखा। श्री रमण ने ध्यान करते समय उससे कहा कि 'धोखा मत खाओ।' बुरी तरह भयभीत होकर कि रमण उस पर यौगिक शक्तियों का प्रयोग कर रहें हैं, साधु दौड़ा हुआ वीरुपाक्ष गुफा में आया और उनसे गिड़गिड़ाकर क्षमा मांगने लगा। श्री रमण ने उससे धीरे एवं शान्त भाव से कहा कि उन्होंने किसी प्रकार की यौगिक शक्तियों का प्रयोग नहीं किया है। यह देखकर कि महर्षि के मुख पर क्रोध या असन्तोष का कोई चिह्न नहीं है, साधु आश्चर्य चकित हो गया।

महर्षि रमण के सम्पर्क में आने वाले प्रथम यूरोपवासी थे श्री एफ० एच० हम्फ्रे। वे इंगलैण्ड से पुलिस विभाग में कार्यरत होकर वेल्लौर आये थे। वहाँ उन्होंने एक पण्डित से तेलुगु भाषा सीखनी शुरू की। पण्डित गणपति शास्त्री तथा श्री रमण दोनों में गुरु भाव रखते थे। हम्फ्रे का असली लगाव किसी सन्त के संसर्ग में आने को था। उन्होंने साधना के बल पर कुछ असाधारण मानसिक शक्तियाँ भी विकसित की थीं। उन्होंने पण्डित से ज्ञात करना चाहा कि क्या वे किसी सत्पुरुष या महात्मा को जानते हैं। पण्डित के अनभिज्ञता प्रकट करने पर उन्होंने स्वप्न में देखे कुछ महात्माओं की आकृतियाँ पेन्सिल से बनाकर पण्डित को दिखाई जो कि क्रमशः गणपति शास्त्री एवं रमण महर्षि से मिलती जुलती थी। पण्डित श्री हम्फ्रे को गणपति शास्त्री के निकट ले गया जो कि उन्हें बाद में श्री रमण के दर्शनार्थ ले गये। महर्षि के सन्निकट बैठकर श्री हम्फ्रे ने अभूतपूर्व आध्यात्मिक शान्ति, तृप्ति एवं आनन्द की अनुभूति प्राप्त की। इस सम्पर्क से उनकी आध्यात्म सम्बन्धी धारणा में मौलिक परिवर्तन हो गया। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय साइकिक गजट में श्री रमण एवं उनकी शिक्षाओं के विषय में प्रशस्ति पूर्ण पत्र लिख भेजे जिससे कि पाश्चात्य जगत श्री रमण से परिचित होने लगा।

विरूपाक्ष गुफा में निवास करने के समय ही श्री रमण की माता अलगम्माल पुनः लौट आयीं और कालक्रम से उनके पास स्थायी रुप से रहने लगीं। उन्होंने असाधारण कष्ट एवं मानसिक वेदना उठायी थी। महर्षि के प्रथम दर्शन के बाद जब वे निराश हो लौट गयीं उसके कुछ दिन बाद ही उनके ज्येष्ठ पुत्र नागास्वामी की मृत्यु हो गयी। वे काशी यात्रा के लिए निकल पड़ी तथा इसी बीच पुनः श्री रमण से मिलने गयी। १९१४ में वे बीमार पड़ीं तो फिर श्री रमण के पास गयी। श्री रमण ने उनकी यथोचित सेवा सुश्रूषा की तथा अरुणाचल से अपनी माता के स्वास्थ्य लाभ के प्रार्थना स्वरूप स्तुति की रचना की। अरुणाचल भगवान ने उनकी प्रार्थना सुनी और उनकी माता ठीक हो गयीं। वे वापिस लौट गयीं किन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन अशान्ति से डाँवाडोल हो गया। मनमदुराई का घरेलू मकान ऋण चुकाने के लिए बेच देना पड़ा। उनके सम्बन्धी एवं संरक्षक श्री नेलईअप्पा अय्यर की मृत्यु हो गयी। इसके बाद पुत्र नागासुन्दर की पत्नी अपने शिशु को छोड़कर चल बसीं। दुःख एवं वेदना से जर्जर उनकी माता अन्ततः अपने प्रबुद्ध पुत्र के पास शान्ति लाभ करने को शरणागत हुई। पहले वे ऐच्छामल नामक स्त्री भक्त के पास रहीं। वहाँ से वे नित्य भोजन बनाकर रमण के पास लाती थीं। किन्तु यह व्यवस्था असुविधा जनक होने से वे श्री रमण के सान्निध्य में जहाँ भी वे रहें, रहने लगी।

अपनी माता अलगम्माल के आने के कुछ दिन

बाद ही रमण वीरुपाक्ष गुफा से स्कन्दाश्रम नाम की जगह पर चले आये। श्री रमण के उत्तरोत्तर बढ़ रहे भक्त परिवार के कारण विरूपाक्ष गुफा अब छोटी पड़ने लगी थी। नया स्थान एक सुरम्य शस्य श्यामल प्राकृतिक सुषमा मण्डित स्थान पर था। अरुणाचल पर ही विरूपाक्ष गुफा से कुछ ऊपर स्थित था। यहाँ पर नयी व्यवस्था केवल यह हुई कि माता अलगम्माल महर्षि एवं त्यागी भक्तों के लिए भोजन बनाने लगी। इससे पहले त्यागी भक्तों एवं साधुओं को भिक्षाटन करना पड़ता था। एक छोटे से रसोईघर की शुरुआत हुई तथा यहीं से रमणाश्रम की नींव पड़ी। कुछ समय पश्चात ही श्री रमण के छोटे भाई नागास्वामी जो अब विधुर थे उनके पास आ गये। कालान्तर में उन्होंने संन्यास ग्रहण किया व स्वामी निरंजनानन्द कहलाये। अपनी माता एवं छोटे भाई के आगमन से श्री रमण के भाव में कोई परिवर्त्तन नहीं आया। पुत्र के रूप में उन्होंने मातृ सेवा में कोई त्रुटि नही रखी किन्तु एक प्रबुद्ध सन्त के रूप में वे अपनी माता की आध्यात्मिक शिक्षा एवं समुचित संस्कारों के आधान के प्रति सतर्क रहे। रमण के समुचित अनुशासन में वे शीघ्र ही समझ गयीं कि जागतिक माता होने के कारण वे कोई विशेषाधिकार पूर्ण स्थान भक्त परिकर में नहीं पा सकतीं। कालान्तर में अनुशासन बद्ध जीवन, उपदेश श्रवण एवं सन्त सान्निध्य के फलस्वरूप वे सम्यक् दृष्टि प्राप्त कर पूरे आश्रम की स्नेह शील एवं सेवा परायण माँ में रूपान्तरित हो गयीं। वृद्धावस्था के कारण जर्जर उनका शरीर प्रायः रुग्ण रहने लगा। अन्त में सन् १९२२ में, वैशाख की नवमी के दिन उन्होंने देह त्याग किया। विरक्त जीवन अपनाने के कारण उनके शरीर को भू-समाधि दी गयी तथा वहाँ एक मातृ-भूतेश्वर नामक शिव लिंग की स्थापना हुई। यह स्थान स्कन्दाश्रम से थोड़े अंतर पर था। पहले यहाँ निरंजनानन्द स्वामी रहने लगे, रमण प्रायः नित्य ही यहाँ समाधि दर्शन के लिए आते थे। एक दिन किसी अज्ञात प्रेरणा से वे वहाँ आकर बैठ गये। तब से वे स्थायी रूप से वहीं रहने लगे। यही स्थान रमणाश्रम नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आश्रम के वन्य परिवेश में जहाँ बाघ, चीते, सर्प व नेवले निःशंक घूमते थे, वहीं आश्रम के भीतर घरेलू पशु विशेषकर कुछ श्वान परिवार भक्त मण्डली तथा आश्रम के वातावरण में सहज भाव से घुल मिल गये थे। कुछ तो बहुत ही समझदार संवेदन शील एवं महर्षि के विशेष आज्ञाकारी थे। इनमें कमला नाम की कुतिया थी जो महर्षि के आदेश पर नवागन्तुक भक्तों को अपने साथ-साथ अरुणाचल की परिक्रमा करालाती थी।

छोटी सी शुरुआत से धीरे-धीरे रमणाश्रम एक विश्व विख्यात आध्यात्मिक केन्द्र में परिवर्तित हो गया। देश के कोने-कोने से एवं सुदूर विदेश से अध्यात्म जिज्ञासु आश्रम में आने लगे। आश्रम की व्यस्त जीवनचर्या एवं निरन्तर बढ़ रहे भक्तों की चहल पहल के बीच भी आध्यात्मिक शान्ति के पुंजीभूत प्रकाश के रूप में विराजमान थे— निर्विकार, निर्लिप्त, प्रायः मौन, नीरव, सौम्य रमण महर्षि।

आश्रम के चारों ओर अतिथिशाला, पशुशाला वैदिक शिक्षण विद्यापीठ, प्रकाशन विभाग, मातृ मन्दिर विकसित होते रहे। श्री रमण बड़े हाल में निर्लिप्त नीरव साक्षीभाव से बैठे रहते थे। यह नहीं कि वे निष्क्रिय थे। वे आश्रम के लिए दोने पत्तल बनाते तो कभी सब्जी काटते; कभी 'प्रेस' से आये प्रूफ पढ़ते थे। कई बार वे समाचार पत्रों को निहारते तो कभी-कभी पत्रों को पढ़ते दीखते थे। किन्तु वे इन सबमें पूर्ण निर्लिप्त नजर आते थे। लोग हॉल में उनके सामने मौन बैठे रहा करते एवं अपूर्व अनिर्वचनीय प्रशान्ति में डूब जाते। उनके सान्निध्य में बैठना अपने आप में एक अनुभव था।

एक बार आश्रम में कुछ चोर घुस आये।

उन्होंने शीशे तोड़ दिये, सामान ले लिया एवं लोगों को भयभीत करने के लिए डण्डे से मारा। उन्होंने श्री रमण की टाँग पर डण्डा मारकर काफी चोट पहुँचायी। महर्षि शान्त एवं निर्विकार रहे। जब लोगों ने प्रतिरोध की चेष्टा की, वे इतना ही बोले 'उन्हें अपना कार्य करने दो, हमें हमारे धर्म का पालन करना चाहिए। बाद में वे चोर सहसा ही पकड़ गये एवं आश्रम की सारी सामग्री भी लौट आयी।

आश्रम को चलाने के लिए नियम आवश्यक होते हैं। यद्यपि आश्रम उनके नाम से बना था, उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध वहाँ की व्यवस्था व शासन से नहीं था। वे सामान्य लोगों से भी अधिक तत्परता से आश्रम के नियमों का पालन करते थे। यदि उनके प्रति कोई विशेष आदर भाव या सम्मान भोजन इत्यादि के समय दर्शाया जाता था तो वे अप्रसन्न होते थे। एक बार भोजन की पंक्ति में सबको आम का एक-एक टुकड़ा मिला। भावना वश परोसने वाले ने उनकी पत्तल में दो रख दिये। महर्षि पत्तल से बिना भोजन किये ही उठकर चले गये यद्यपि उन्होंने किसी से कुछ कहा नहीं।

भारत के अलावा, पाश्चात्य देशों के प्रख्यात लेखक, चिन्तक, साहित्यकार एवं दर्शन वेत्ता महर्षि के सान्निध्य में आये। इनमें पॉल ब्रन्टन, आर्थर ओसबोर्न, मेजर चेडविक (बाद में साधु अरुणाचल) तथा विश्व विख्यात सॉमरसेट मॉम आदि हैं।

सभी का एक मत से यही अनुभव था कि महर्षि के सान्निध्य में बैठना मात्र ही आध्यात्मिक शिक्षण था। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व से निर्गत प्रशान्त एवं सौम्य अध्यात्म की शीतल ज्योति ने सभी को आप्लावित कर दिया।

बहुत से लोग, विशेषकर पाश्चात्य भावों एवं विचारों से संस्कारित जिज्ञासु उनसे समाज सुधार एवं जगत के उपकार तथा विश्व की ज्वलन्त समस्याओं के समाधान का पूर्वाग्रह लेकर मिलते थे। उनके प्रश्न भी वैसे ही होते थे। समाज सुधारकों एवं सेवियों के लिए महर्षि का क्या संदेश है? क्या यह प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक का कर्त्तव्य नहीं है कि वह अपने पिछड़े दरिद्र सहजीवियों के उन्नयन के लिए प्राणपन से चेष्टा करे? जब तक संसार में पीड़ा, दरिद्र्य, बीमारी, अज्ञान एवं युद्ध की विभीषिका है क्या यह प्रत्येक हृदयवान व्यक्ति का दायित्व नहीं कि वह संघर्ष में उतर पड़े? महर्षि निर्लिप्त भाव से सुनते रहते इन प्रश्नों को फिर वे इन प्रश्नकर्त्ताओं से पूछ बैठते' 'क्या तुमने पहले अपने आप को सुधार लिया है?'

प्राय: ऐसा ही होता हैं कि हमारी आत्म-प्रशंसित समाज सेवा जगत के कल्याण का भाव हमारी अहम्-तुष्टि का एक माध्यम होता है, मात्र अपने अहंकार की तुष्टि एवं पुष्टि के लिए हम समाज उद्धार को एक विधा के रूप में अपना लेते हैं। ऐसी सेवा से सेवा करने वाले व सेवा प्राप्त करने वाले दोनों का पारमार्थिक अहित होता है। एक का अहंकार बढ़ता है तो दूसरे का दैन्य एवं नैतिक पतन सम्पूर्ण हो जाता है। अहंकार के मूल अज्ञान का निवारण हुए बिना, आत्मा की अनुभूति किये बिना जगत की सेवा यथार्थ रूप में सम्भव ही नहीं है। अत: आत्मा को जानने के लिए महर्षि जोर देते थे। श्री रामकृष्ण भी यही कहते थे। पहले भगवान फिर उसकी सृष्टि। पहले ईश्वर को जानो फिर उसका आदेश मिले तो जगत की सेवा भी कर सकते हो। अन्यथा वृथा कर्म वृथा श्रम। आत्मज्ञानी ही जगत की सर्वश्रेष्ठ सेवा करता है।

पाश्चात्य विद्वान पॉल ब्रन्टन ने जब संसार की समस्याओं के लिए प्रश्न उपस्थित किये तो महर्षि का यही उत्तर था कि 'जो संसार की सृष्टि, पालन व संहार कर सकता है वह संसार की समस्यओं का समाधान भी कर सकता है। जो विश्व को

जीवन देता है, वही उसका पालन भी करता है। संसार का भार वह वहन करता है, न कि तुम।'

आश्रम में जीवन प्रशान्त झरने की तरह व्यतीत होता रहा। श्री रमण कभी-कभी भक्तों को साथ लेकर, कभी अकेले ही पवित्र अरुणाचल की परिक्रमा पर निकल जाते। कभी-कभी वे स्कन्दाश्रम में कुछ देर ठहर जाते। आश्रम में वार्षिक प्रकाश महोत्सव, माता अलगम्माल का पुण्य-स्मृति-दिवस, तथा, श्री रमण महर्षि का जन्मोत्सव विशेष रूप से मनाये जाते थे। उस दिन दूर-दूर से भक्तों का समागम होता था और आश्रम आनन्द की हाट बन जाता था।

आश्रम में रह रहे पशु पक्षी भी श्री रमण के आध्यात्मिक भाव से अछूते नहीं थे। वे रमण से अपने ही तरीके से सम्भाषण एवं व्यवहार करते थे तथा उनके स्नेह स्पर्श के चिर आकांक्षी रहा करते थे। एक बार एक दर्शनार्थी अपने पले हुए दो चीते के बच्चों को साथ ले आया। आश्रम में उन्हें दूध पिलाया गया। बाद में वे महर्षि के पास आसन पर जाकर लेट गये और गहरी नींद में सो गये। आश्रम के नित्य आने वाले कबूतर व गिलहरियाँ आदि निःशंक आते रहे व अपना भोजन दाना इत्यदि चुगते रहे। ऐसा था महर्षि का प्रशान्त आभा-मण्डल। इसमें सर्वोपरि, लक्ष्मी गाय का अद्भुत एवं असाधारण व्यवहार था। वह एक छोटी बछिया के रूप में आश्रम में आयी थी और महर्षि के चिर स्नेह में आबद्ध हो गयी थी। विशेष दिवसों पर वह ठीक नियत समय पर महर्षि को बुला ले जाने के लिए उनके पास आ जाती थी तथा उन्हें अपने साथ लेकर उत्सव स्थल को जाती थी। सन् १९४८ की १७ जून को वह महर्षि की गोद में अपना सिर रखकर स्नेह-स्निग्ध कृतज्ञ नेत्रों से उन्हें निहारती चिर-समाधि में लीन हो गयी। बाद में उसकी स्मृति में जहाँ उसे गाड़ा गया था वहाँ एक पक्की समाधि का निर्माण किया गया। एक वृद्धा जो अपने जीवन काल में तरुण महर्षि के लिए नित्य दूध लेकर आती थी वह अपने अन्तिम समय में चिन्ता से ग्रस्त हो गयी कि उसके बाद महर्षि को दूध कौन पिलायेगा। कुछ लोगों का विश्वास था कि वही वृद्धा पुनर्जन्म लेकर लक्ष्मी गाय के रूप में महर्षि को दूध प्रदान करने के लिए आयी थी कुछ भी कहा जाय किन्तु एक सम्भावना के रूप में इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

१ सितम्बर सन् १९४६ को श्री रमण महर्षि को तिरुवन्नामलाई में पदार्पण किये हुये पूरे ५० वर्ष हो गये। भक्त परिकर ने इस अवसर को स्वर्ण-जयन्ती के रूप में धूमधाम से मनाने का निश्चय किया। श्री रमण पूर्ण रूप से उदासीन थे, उन्होंने भक्तों को स्वर्ण जयन्ती को उत्सव का रूप देने के लिए निरूत्साहित भी किया किन्तु अन्त में उनको उत्कट इच्छा देखकर वे सहमत हो गये। पूरे देश से भक्त जन इस पुनीत दिन में लाभ उठाने के लिए एकत्र हो गये। प्रातः कालीन मंगल ध्वनि, स्वस्ति वाचन, आवाहन एवं अर्चना से कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। विभिन्न भाषाओं में स्तोत्र, प्रशस्ति, एवं महर्षि के अभिनन्दनार्थ रचनाएँ प्रस्तुत की गयीं। दोपहर को एक विशाल जन समारोह में महर्षि का अभिनन्दन किया गया। तत्पश्चात् संगीत एवं हर्षोल्लास के वातावरण में वेदोच्चारण के साथ दिवस सम्पन्न हुआ। इस सबके मध्य महर्षि पूर्ण तटस्थ एक दर्शक के भाव से बैठे रहे। ऐसा लगता था वे उस भाव-भूमि पर रह रहे थे जहाँ इस प्रकार के बाह्य अलंकरणों एवं उपचारों कोई मूल्य नहीं रह जाता है।

अगली सुबह एक भक्त के यह कहने पर कि पिछली रात (स्वर्णजयन्ती दिवस) काफी वर्षा हुई; सौभाग्य से हमारे आयोजन में बाधा नहीं पड़ी, श्री रमण कुछ स्मरण करते हुये से बोले 'मुझे याद आता है उस रात भी जब मैं यहाँ पहली बार

आया था, ऐसी ही वर्षा हुई थी। मैं मन्दिर के मण्डप में रह रहा था। उसी दिन सुबह मैंने एक कौपीन के अतिरिक्त सभी वस्त्र पूर्णतया त्याग दिये थे। भारी वर्षा एवं हवा के कारण सर्दी मुझे असह्य लगने लगी अतः मैंने भागकर पास के मकान के बरामदे में आश्रय लिया। मध्यरात्रि के लगभग कोई गृहवासी सड़क का दरवाजा खोलकर बाहर निकला और मैं भागकर बड़े मन्दिर में चला आया। इसके बाद भी कई दिनों तक वर्षा होती रही।

सन् १९४७ से श्री रमण का स्वास्थ्य गिरने लगा। १९४८ के अन्त में उनके बायें हाथ की कोहनी के नीचे एक व्रण (फोड़ा) निकल आया व काफी बढ़ गया आश्रम के चिकित्सक ने उसे काट दिया किन्तु एक महीने के बाद वह फिर निकल आया। मद्रास से डॉक्टर बुलाये गये। उन्होंने शल्य-क्रिया द्वारा फोड़े को काट दिया किन्तु उसके बाद घाव भरा नहीं तथा फोड़ा फिर उभर आया। पूर्ण निदान करने पर यह एक प्रकार का 'कैन्सर' साबित हुआ।

चिकित्सकों ने रोग ग्रस्त भाग से ऊपर हाथ को काट देने की सलाह दी। किन्तु महर्षि ने सहमति नहीं दी। उन्होंने यही कहा 'चिन्तित होने की कोई बात नहीं। शरीर स्वयं ही एक व्याधि है। इसे अपना नैसर्गिक अवसान प्राप्त करने दो। इसे छिन्न क्यों करते हो? घाव पर सामान्य मरहम पट्टी करते रहने से काम चल जायेगा।'

बीमारी बढ़ती गयी। चिकित्सा से कोई लाभ होता नजर नहीं आया। महर्षि निर्विकार मौन साक्षी के रूप में सब कुछ देखते रहे। अन्तिम दिनों में उन्होंने आग्रह पूर्वक कहा कि जो भी उनके दर्शनार्थ आना चाहे आने दिया जाय, रोका नहीं जाये। जो भक्त महर्षि की बीमारी से शोकाकुल थे उनके प्रति करुणा का भाव था। वे कहते 'कितने खेद की बात है। ये लोग मोह से शोकार्त हो रहे हैं कि भगवान (महर्षि) उनको छोड़कर चले जायेंगे, किन्तु वे कहाँ और कैसे जा सकते हैं?'

अन्त में १४ अप्रैल १९५० को परिनिर्वाण का क्षण उपस्थित हुआ। उस दिन शाम को महर्षि ने आश्रम में आये सभी भक्तों को दर्शन दिया। भक्त उनको घेर कर बैठे थे। वे महर्षि द्वारा रचित अरुणाचल को सम्बोधित स्तोत्र का सस्वर पाठ कर रहे थे। स्तोत्र की अन्तिम कड़ी के रूप में बारम्बार 'अरुणाचल शिवा' 'अरुणाचल शिवा' की ध्वनि समस्त वातावरण में गूंज रही थी।

महर्षि ने अपनी सेवा में नियुक्त भक्तों से उठाकर बैठा देने के लिए कहा। ऐसा ही किया गया। उन्होंने अपने तेजोदीप्त कृपा स्निग्ध नेत्रों को कुछ समय के लिए एक बार खोला। उनके चेहरे पर मुस्कान आ गयी; आँख के बाहरी कोने से आनन्दाश्रु का एक कण झर पड़ा। ८ बजकर ४७ मिनट पर उनका श्वास स्वात्मा में विलीन हो गया। कोई संघर्ष नहीं; किसी प्रकार की ऐंठन या मृत्यु की पीड़ा का कोई बाहरी चिह्न नहीं प्रकट हुआ। लोगों ने देखा, उसी समय एक विशाल तारा आकाश में टूटा और मन्थर गति से पवित्र अरुणाचल के शिखर चूड़ पर से गुजरता हुआ उसके पीछे अदृश्य हो गया।

साधना और सिद्धि

यह कथा अपने पश्चिम-प्रवास के दौरान स्वामी जी द्वारा लिखी गयी पुस्तक "राजयोग" में सकलित है।

नारदजी देवताओं के ऋषि थे। वीणा बजाकर हरिगुणगान करते हुए वे स्वर्ग और मृत्युलोक में घूमते रहते थे। उनके लिए कहीं जाने की बाधा न थी। एक दिन वे एक वन के बीच से जा रहे थे। इसी बीच उनकी भेंट किसी साधक से हुई। संसार से निवृत वे साधक अहर्निश भगवत् साधना में लगे हुए थे। उनके शरीर पर चीटियाँ बिल बना कर रहती थीं। किन्तु उन्हें इसकी चिन्ता लेशमात्र भी न थी। वे निर्विकार मन से साधनारत थे।

नारद को वे देखते ही पहचान गये। प्रणाम करने के बाद पूछा, प्रभु, आप कहाँ चले ?

नारद ने जवाब दिया, "मैं वैंकुंठ जा रहा हूँ" वैकुंठ नारायण का घर है। उन्हीं के दर्शन करने को नारद वहाँ जा रहे थे। साधक ने कहा—"आप जब वैकुंठ जा ही रहे हैं तो एकबार भगवान से पूछियेगा कि वे मुझ पर कब कृपा करेंगे, कब मैं मुक्ति पाऊँगा।

थोड़ा आगे जानेपर देवर्षि ने एक और व्यक्ति को देखा। अनेक प्रकार से नाच गाकर वह ईश्वर को पुकार रहा था। नाच गाने की उसकी भंगिमाएँ बड़ी विचित्र थी।

नारद को देख वह भी पहचान गया। अत्यंत भक्ति भाव से प्रणाम कर पूछा प्रभु आज इधर कैसे ?

उस व्यक्ति के बोलने का ढंग भी कुछ अजीब सा था। नारद बोले जरा वैकुण्ठ जा रहा हूँ।

सुनकर अतिप्रफुल्लित हो उठा। नारद से बोला, प्रभु, जब वैकुण्ठ जाएँ तो नारायण से पूछिएगा कि मैं कब मुक्ति पाऊँगा।"

नारद उसे आश्वस्त कर आगे बढ़े। थोड़ी देरबाद वे फिर लौट पड़े। लौटते समय प्रथम साधक से उनकी भेंट हुई। बस चीटियों से घिरे वह एकमन से भगवान की साधना कर रहे थे। ज्यों ही नारद की वीणा की झंकार उन्होंने सुनी, उन्होंने आँखें खोलीं। नारद को सामने पाकर पूछा—"आपने क्या मेरी बात ईश्वर से पूछी, प्रभु !"

"हाँ, पूछी थी।" नारद बोले।

"उन्होंने क्या कहा ? कब वे मुझे त्राण देंगे ?" आकुल हो साधक ने पूछा।

"तुम्हें और चार जन्मों के बाद मुक्ति मिलेगी ?" यह बात सुन साधक अत्यंत दुःखी होकर कहने लगा—ओह, इतनी देरी। मैंने इतने दिनों तक साधना की। रात-दिन मैं ईश्वर का ही ध्यान करता हूँ। अभी भी मुझे चार जन्म लगेंगे।

इतना कहकर साधक अत्यंत दुःखी हो करुण विलाप करने लगा। यह देख कर नारद धीरे-धीरे दूसरे व्यक्ति की ओर जाने लगे। उन्हें देखकर ही उसने पूछा—"आपके मन में क्या मेरी बात आयी थी, प्रभु ? आपने क्या उनसे पूछा है ?"

"हाँ पूछा है। वे बोले कि वह जो इमली का पेड़ है उसमें जितने पत्ते हैं उतने जन्म तुम्हें लेने होंगे।"

यह बात सुनकर वह व्यक्ति आनन्द से पागल-सा हो गया। वह सोचने लगा मेरे प्रति भगवान कितने कृपावान हैं। योगी—महात्मा जन्म-जन्म भटकते रहते हैं, कठोर तपस्या करते हैं फिर भी भगवान के दर्शन उन्हें नहीं होते। अन्य देवी देवता भी नारायण के दर्शन को प्यासे रहते हैं। उनकी दया से मुझे उनके दर्शन होंगे। मेरा अहोभाग्य।

यह सोच आनन्द से वह और नाचने-गाने लगा।

यह अद्भुत आश्चर्य देख नारद भी चकित हो गये। तभी आकाशवाणी हुई कि जो व्यक्ति साधना में उद्यम खो बैठते हैं वे कभी सिद्ध नहीं हो पाते। तुमने इमली के पेड़ में जितने पत्ते है उतने जन्मों को भी कुछ नहीं समझा। मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम्हें अभी मुक्ति मिल जाएगी।

वैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार में
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
वैद्यनाथ
च्यवनप्राश
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
पटना-८००००१
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं २०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
वैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार कर
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
वैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
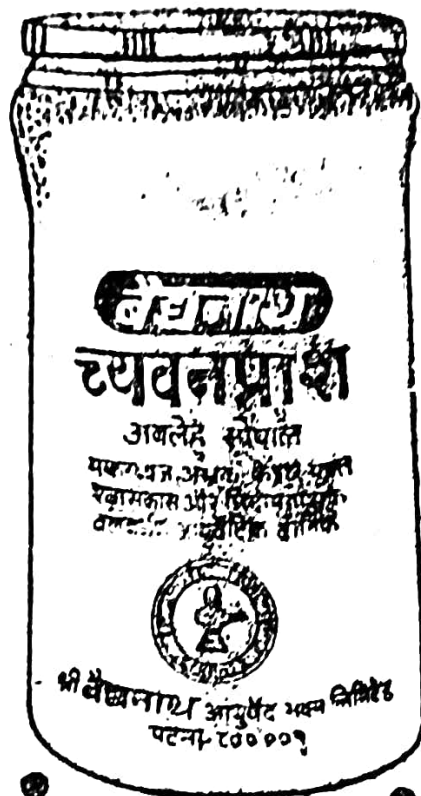
श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम्

फोन : २६३९ जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विनम्र निवेदन

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की स्थापना भगवान श्रीरामकृष्ण के एकमात्र गैर-बंगाली शिष्य और स्वामी विवेकानन्द के गुरु-भ्राता स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज की स्मृति में १९८८ ई० में की गयी। स्वामी अद्भुतानन्द जी का जन्म बिहार राज्य के छपरा जिला के एक गाँव में एक निर्धन गड़ेरिया परिवार में हुआ था। निरक्षर होने पर भी श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक निर्देशन में व ब्रह्मज्ञ हुए और स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण की अद्भुत सृष्टि जानकर उन्हें स्वामी अद्भुतानन्द नाम से अभिहित किया।

आश्रम ने प्राय: २ एकड़ भूमि ९६ ००० रुपये में बिहार सरकार से अर्जित की। श्री रामकृष्ण के बिहार एवं बिहार के बाहर के भक्तों के कृपापूर्ण दान से ३५००० वर्गफीट में स्वामी अद्भुतानन्द स्मृति-भवन का निर्माण हो रहा है जिसमें भगवान का एक गर्भगृह (मन्दिर), प्रार्थना भवन, २ कमरों स्नानागार युक्त संत-निवास, एक बड़ा पुस्तकाय कक्ष, एक दातव्य औषधालय कक्ष, कार्यालय-कक्ष, भोजनालय, रसोई घर, राहत-भवन, भण्डार गृह आदि संयुक्त हैं। इसमें अब तक ७ लाख रुपये व्यय हो चुके हैं। निर्माण कार्य समाप्तप्राय है। किन्तु इसे अन्तिम रूप देने में अभी लगभग २ लाख रुपये और लगने की सम्भावना है।

अत: आपसे हमारा आन्तरिक एवं विनम्र निवेदन है कि इस महत् कार्य में अपनी सामर्थ्य एवं गरिमा के अनुरूप उदारतापूर्ण दान देकर हमें कृतार्थ करें। इस कार्य में बड़ा दान भी कम है और कम दान भी बहुत बड़ा है। आपका कोई भी दान हमारे लिए बहुत बड़ा सम्बल सिद्ध होगा।

प्रेम और शुभेच्छाओं के साथ

प्रभु सेवा में आपका

डा० केदार नाथ लाभ

सचिव

ध्यातव्य : (१) सभी प्रकार के दान सधन्यवाद स्वीकार किये जायेंगे।

(२) चेक या बैंक ड्राफ्ट "श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम" छपरा के नाम से क्रॉस किये हुए होने चाहिए।

(३) श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम को दिये गये सभी दान आय-कर के अधिनियम ८० जी. के अन्तर्गत आय-कर से मुक्त हैं।

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	९.००
प्रेमयोग	६.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	६.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	५.००
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	१२.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	६.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००

पुस्तक	मूल्य
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००
विविध	
विवेकानन्द साहित्य संचयन (महत्त्वपूर्ण व्याख्यान, लेख, पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२५.००
" (सस्ता संस्करण)	१५.००
पत्रावली — (धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	२१.००
भारतीय व्याख्यान	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
वर्तमान भारत	२.५०
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	९.००
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	४.५०
युवकों के प्रति	१०.००
विवेकानन्द— राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना — ४ में मुद्रित।